सम्पर्क • सहयोग • संस्कार • सेवा • समर्पण

January-March 2020
Year 17th : Issue 1st

जनवरी - मार्च 2020
वर्ष सप्तदश - अंक प्रथम

॥नव संवत्सर 2076॥

# ज्ञान प्रभा

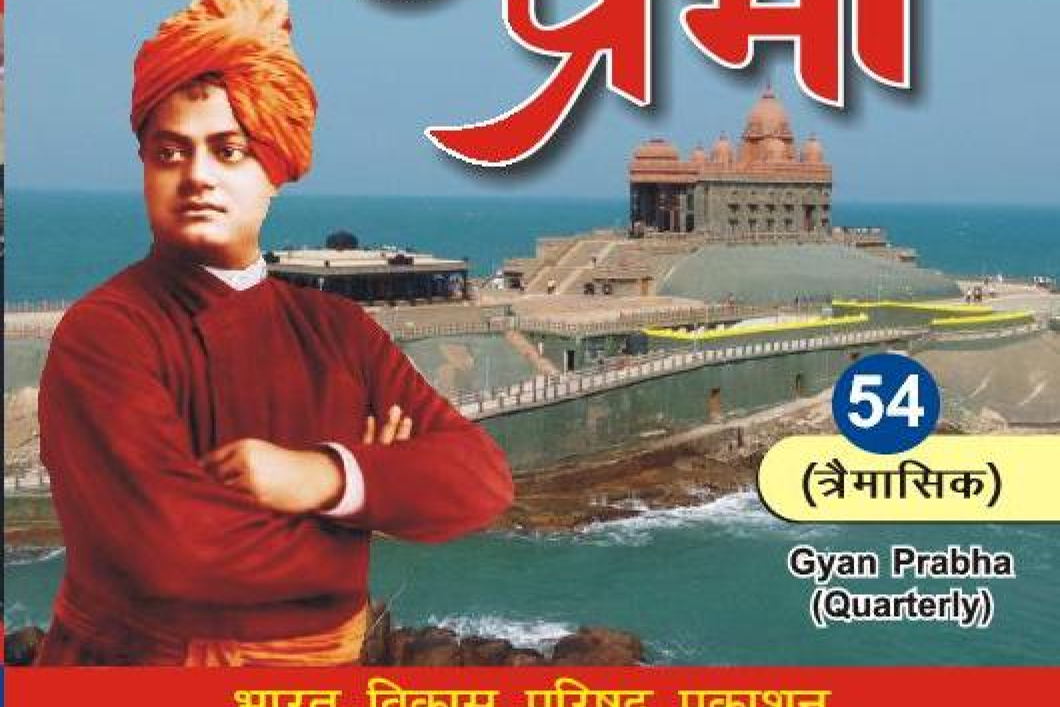

54

(त्रैमासिक)

Gyan Prabha
(Quarterly)

## भारत विकास परिषद् प्रकाशन

स्वस्थ-समर्थ-संस्कारित भारत • Swasth-Samarth-Sanskarit Bharat

रीजनल सम्मेलन

राष्ट्रीय समूहगान

## BVP Prakashan

**National President**
**Dr. Suresh Chandra Gupta**
M. : 94153-34709 (Farrukhabad)

**National Vice President (H.Q.)**
**Shyam Sharma**
M. : 98290-38190 (Kota)

**National Secretary General**
**Ajay Dutta**
M. : 94170-16915 (Chandigarh)

**National Finance Secretary**
**Om Prakash Kanoongo**
M. : 93222-95253 (Mumbai)

**Advisor - Prakashan**
**Atam Dev**
M. : 98185-32131 (Delhi)

**Advisor Gyan Prabha**
**Suresh Chandra**
Ph.: 75794-57994 (Dehradun)

**National Vice Chairman Prakashan**
**Mahesh Sharma**
M. : 98111-05568 (Delhi)

**Editor Gyan Prabha**
**Dr. Champa Srivastava**
M. : 93360-04691


© सर्वाधिकार सुरक्षित


**प्रकाशन : भारत विकास परिषद्**
भारत विकास भवन
बी डी ब्लॉक
डीडीए मार्केट के पीछे
पावर हाउस मार्ग
पीतमपुरा, दिल्ली–110034

फोन : 011–27313051, 27316049
इमेल : bvp@bvpindia.com
वेबसाईट : bvpindia.com
संस्करण : 2019


**आवश्यक सूचना :**
ज्ञान प्रभा में छपे सभी लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के हैं, इनसे सम्पादक अथवा प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

● सम्पर्क ● सहयोग ● संस्कार ● सेवा ● समर्पण


**January - March 2020**
**Year 17th - Issue 1st**

जनवरी – मार्च 2020
वर्ष सप्तदश – अंक प्रथम


# GYAN PRABHA
**(Quarterly)**

# ज्ञान प्रभा
(त्रैमासिक)

54


सम्पादक
**डॉ0 चम्पा श्रीवास्तव**
मो0 9336004691

सह सम्पादक
**शकुन प्रसाद पाण्डेय**
मो0 9451319144



मूल्य : 60/– रुपये वार्षिक : 200/– रुपये आजीवन : 2000/– रुपये

**भारत विकास परिषद् प्रकाशन**
स्वस्थ–समर्थ–संस्कारित भारत ✶ *Swasth-Samarth-Sanskarit Bharat*

# अनुक्रमणिका


| क्रम सं0 | विषय | लेखक | पृष्ठ सं0 |
|---|---|---|---|
| 1. | सम्पादकीय | डॉ0 चम्पा श्रीवास्तव | 3 |
| 2. | समान नागरिक संहिता | हृदय नारायण दीक्षित | 5 |
| 3. | स्वामी विवेकानन्द का सन्देश | आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री | 8 |
| 4. | युवाओं के लिए विवेकानन्द की प्रासंगिकता | सुभाष सेतिया | 14 |
| 5. | कमलेश्वर की क्रांतिधर्मी रचनात्मकता | कृष्ण कुमार यादव | 18 |
| 6. | स्वामी विवेकानंद का अध्यात्म और अद्वैतवाद | डॉ. श्रीमती बसन्ती हर्ष | 22 |
| 7. | हिंदी के विस्तार में है अन्य भाषाओं का हित | कृपाशंकर चौबे | 27 |
| 8. | कोई दोस्त क्यों नहीं मिलता | विजय गोयल | 30 |
| 9. | आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में नारी शक्ति | आकांक्षा यादव | 32 |
| 10. | महिलाओं की वित्तीय सुरक्षा | डॉ0 प्रीति अडाणी | 38 |
| 11. | मकर संक्रान्ति | अरूण तिवारी | 40 |
| 12. | भारतीय लोकतंत्र का आज | कुलदीप कुमार | 44 |
| 13. | वेदमाता गायत्री की कृपा से नव निधियों की प्राप्ति | द्वारिका प्रसाद चैतन्य | 48 |
| 14. | सब एक हैं, सब अद्वैत हैं | डॉ0 ज्ञान पाठक | 52 |
| 15. | संस्कार सरिताः यमुना | डॉ0 हरि प्रसाद दीक्षित | 56 |
| 16. | झालावाड की चित्रांकन परम्परा | ललित शर्मा | 61 |
| 17. | बाहा बोंगाः प्रकृति से संसर्ग का पर्व | चन्द्र मोहन किस्कू | 66 |
| 18. | वासन्ती ओज से भरे ददरिया गीत | डुमन लाल ध्रुव | 72 |
| 19. | बाली में अध्यात्मोत्सव | रजनी सिंह | 79 |
| 20. | वृक्षों में जीवन होता है | डॉ0 प्रभात कुमार | 81 |
| 21. | The Constrained Arm of the Law | Prakash Singh | 82 |
| 22. | Western Feminism and Hindu Womanhood | Sujata Rao | 86 |
| 23. | Winning Cannot be Made a Habit | T.G.L. Iyer | 94 |


 OOO

# संपादकीय

❑ डॉ0 चम्पा श्रीवास्तव

भारतीय संस्कृति ही भारत देश का प्राण तत्व है। विश्व के जिन राष्ट्रों ने सांस्कृतिक मूल्यों को सुरक्षित एवं संरक्षित करने में अग्रणी भूमिका निभायी है, उनमें भारत का नाम अग्रगण्य है। धर्म, दर्शन, नैतिकता, आचार–विचार तथा रहन–सहन की जिन मूलभूत मान्यताओं को मानव ने परंपरा से सहर्ष अर्जित किया है, वे ही संस्कृति के मुख्य उपादान स्वीकार किये गये हैं। आज के इस विषम समय में इस अदम्य भारतीय संस्कृति के समक्ष अनेकानेक चुनौतियाँ विकराल रूप में उपस्थित हो गयी हैं। कभी पाश्चात्य संस्कृति, कभी टी0वी0 संस्कृति, कभी भाषायी संस्कृति तो कभी अनैतिक झंझावात भारतीय संस्कृति को ध्वस्त करने हेतु अग्रसर हैं। ऐसे समय में प्रश्न उठता है कि भारत की वह सांस्कृतिक विरासत जिसके कारण भारत विश्व गुरू कहलाता था, आज क्या उसका कोई वारिस नहीं ? क्या बिना किसी संरक्षक के वह उस गुरूत्व को धारण कर सकेगी? क्या भारत की आत्मिक तथा आध्यात्मिक महात्म्य विश्व का मार्गदर्शन कर सकेगा? इसका एक ही स्पष्ट उत्तर है कि अनुपम शक्ति के पावन स्रोत युवा एवं युवतियाँ ही भारत को भारतीयता से अभिमंडित कर सांस्कृतिक दृष्टि से भारत को नव निर्माण का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

लक्ष्य का मार्ग लम्बा एवं दुरूह हो सकता है किन्तु असाध्य नहीं। युवा वर्ग का सांस्कृतिक आधार ही व्यक्ति से लेकर विश्व तक को संस्कारों का पाठ पढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सकता है। मैं नमन करती हूँ उस संस्कारित युवा बेटे को जो चलने में असमर्थ अपने अति वृद्ध पिता को एक अच्छे रेस्टोरेन्ट में भोजन कराने ले गया। भोजन के दौरान वृद्ध पिता ने कई बार सब्जी की करी तथा अन्य खाद्य सामग्री को अपने कपड़ों पर गिरा लिया। रेस्टोरेन्ट के अन्य खा रहे लोग नाक–भौं सिकोड़ रहे थे। उस बुजुर्ग की खाने की शैली देखकर कई लोग खीज रहे थे कि क्या जरूरत थी इन्हें लाने की ? किन्तु युवक शांत था। खाने के पश्चात उसने बड़ी हर्षित मुद्रा में वृद्ध पिता के कपड़े पर गिरे जूठन को साफ किया, चेहरा साफ किया, फिर जेब से कंघी निकालकर बाल ठीक किये, चश्मा में जो दाल आदि लगी थी, उसे साफ करके आँखों में लगा दिया। तत्पश्चात् संतुष्ट पिता को मुस्कुराते हुएअंगुली पकड़कर सीढ़ी के पास खड़ी गाड़ी पर बैठाया और बिल का भुगतान करने के लिए तत्परता के साथ पुनः अपनी सीट पर आ गया। बिल का भुगतान कर तेजी से वह युवा अपनी गाड़ी की ओर मुड़ा ही था कि रेस्टोरेन्ट से कई आवाजें एक साथ आईं। तुम इस रेस्टोरेन्ट में एक अनमोल चीज छोड़कर जा रहे हो बेटा! युवा ने जेब का मोबाइल चेक किया और फिर आगे बढ़ा। फिर वही आवाज–बेटा तुम यहाँ पर बड़ी कीमती चीज छोड़कर जा रहे हो। युवा ने मुड़कर कहा– नहीं सर! मैं

कुछ भी छोड़कर नहीं जा रहा हूँ। वे बोले– यहाँ पर तुम अपने समय और समाज के प्रत्येक पुत्र के लिए एक शाश्वत सीख तथा प्रत्येक वृद्ध पिता के लिए एक उम्मीद छोड़कर जा रहे हो। वास्तव में आज की युवा पीढ़ी अपने बुजुर्ग माता–पिता को अपने साथ कहीं भी अपने साथ ले जाना नहीं पसंद करते। अगर माँ–पिता कभी बच्चों के साथ घूमने जाने का मन भी बनाते हैं तो बच्चे यही कहते हैं कि आप हमारे साथ चलकर क्या करेंगे ? आपसे चला तो जाता नहीं और ना ही खाना खाया जाता है। आप घर में ही रहो यही सर्वोत्तम है, ऐसा कहते वक्त शायद वे भूल जाते हैं कि ये वही माता–पिता हैं जो उनके न चल पाने की स्थिति में उँगली पकड़कर चलाते थे। उन्हें वे खाना खिलाते थे। वे कभी यह नहीं सोचते थे कि बेटा उनके कपड़ों को गंदा कर देगा तथा बच्चे को अगर खाना खिलायेंगे तो हाथ गंदे हो जाएंगे।

माता–पिता अपने बच्चों को उच्चतम शिक्षा एवं सुविधा देने हेतु अपना सब कुछ दाँव पर लगा देते हैं। आज जब वे वृद्ध हो गये हैं तो प्रत्येक युवा एवं युवती का पावन कर्तव्य है कि अगर वृद्ध माता–पिता से कोई भूल हो जाये तो उनके ऊपर नाराज न हों अपितु अपना वह दिन याद करें कि आपकी बड़ी से बड़ी भूल को भी वे भूलकर आपके विकास की ही बात सोचते थे। अगर वे चल न पायें तो प्रत्येक युवा को वह दिन याद करना होगा जब माता–पिता बड़े प्यार से उसकी उँगली पकड़कर चलाते थे। अगर आपके वृद्ध पिता नाराज हो जायें तो अपने वो दिन याद करना जब तुम्हारी नाराजगी को दूर करने के लिए तुम्हारे पिता अपने ही सुख की तिलांजलि देकर तुम्हें वह चीज मुहैयया कराते थे। हर युवा को यह ध्यान रखना होगा कि जब अपने वृद्ध माता–पिता के साथ चले तो आपका कदम उनके कदमों से छोटा हो अर्थात आप उनके आगे न चलें जिससे उन्हें यह अहसास न हो कि अब वे चलने फिरने में असमर्थ हो गये हैं। जब आप अपने वृद्ध माता–पिता से बात करें तो आपका स्वर उनके स्वर से नीचे हो जिससे उन्हें यह अहसास न हो कि आप उन पर खीझ रहे हैं। भारत के प्रत्येक युवा के लिए यह भी सत्य है कि अपने माता–पिता का सम्मान करेंगे तो वे युवा बच्चों को कुछ दे सकें या न दे सकें किन्तु दुआएँ तो अवश्य देंगे जो युवाओं के विकास के चरम का स्पर्श करायेगा। यदि ऐसा सम्भव हुआ तो जीवन की हर चुनौती मार्गदर्शक बन जायेगी। विषमताओं की रेतीली कतार में प्रत्येक युवा का जीवन बसंत बन जायेगा।

ज्ञान–प्रभा का यह 54वाँ अंक युवा भारत के प्रत्येक युवा को समर्पित है और उन वरिष्ठों को भी जो तन से नहीं, मन से युवा हैं। हम सभी उत्सव प्रेमी हैं। ज्ञान–प्रभा के प्रत्येक पाठक को मैं युवा दिवस, वसंत, होली माघी पूर्णिमा, गुरू नानक जयंती आदि अन्य पर्वों हेतु अनंत मंगलकामनाएं व्यक्त करती हुयी आप सभी पाठकों के स्नेहिल सुझाव की आकांक्षी हूँ।

**डा0 चम्पा श्रीवास्तव**

○○○

# इसलिए जरूरी है समान नागरिक संहिता

❑ **हृदय नारायण दीक्षित**

'हमभारत के लोग' भारतीय राष्ट्र राज्य की मूल इकाई है। संविधान की उद्देशिका 'हम भारत के लोग' से ही प्रारंभ होती है। इसके अनुसार भारत के लोगो ने अपना संविधान गढ़ा है। संविधान निर्माताओं ने प्रत्येक नागरिक को समान मौलिक अधिकार दिए हैं। मूल अधिकार न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय हैं। राष्ट्र राज्य को भी अनेक कर्तव्य सौंपे गए हैं। वे संविधान के भाग–चार में राज्य के नीति निदेशक तत्वों में वर्णित हैं। वे न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं। इनमें व्यापक राष्ट्रीय आकांक्षा को ही सूचीबद्ध किया गया है। ग्रेनविल ओस्टिन ने ठीक लिखा है कि 'राज्य की सकारात्मक बाध्यताओं की रचना करके संविधान सभा ने भारत को भावी सरकारों के उत्तरदायित्व सौंपे हैं। कुछ निदेशक तत्वों पर सकारात्मक काम हुआ है, लेकिन राष्ट्रीय एकता के लिए अपरिहार्य 'एक समान नागरिक संहिता' (अनुच्छेद 44) के प्रवर्तन में कोई प्रगति नहीं हुई है। सर्वोच्च न्यायपीठ ने तीखी टिप्पणी की है कि 'समान नागरिक संहिता लागू करने के लिए अब तक कोई प्रयास नहीं हुआ। न्यायालय ने इसके पहले 2003, 1995 और 1985 में भी संहिता पर जोर दिया था।

संविधान और विधि के प्रति निष्ठा प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। समान नागरिक संहिता संविधान का भाग है। संविधान का आदर्श भी है। बावजूद इसके सांप्रदायिक कारण से इसका प्रवर्तन राष्ट्र की मुख्य चुनौती है। सर्वोच्च न्यायालय ने चौथी बार ध्यानाकर्षण किया है। उसने गोवा की प्रशंसा की है। गोवा में पथिक विश्वास के परे समान नागरिक संहिता है। बेशक निदेशक तत्वों के प्रवर्तन में न्यायालय की अधिकारिता नहीं है, लेकिन जीवन स्तर उन्नत करने संबंधी निदेशक तत्व (अनुच्छेद 47) पर अच्छा काम हुआ है।

मोदी सरकार ने इस मोर्चे पर आशातीत प्रगति की है। कुटीर उद्योगों के निदेशक तत्व (अनुच्छेद 43) पर बड़ा काम हुआ है। ग्राम पंचायतें भी इसी सूची (अनुच्छेद 40) में हैं। इसे लेकर तमाम अधिनियम बने हैं। संविधान में संशोधन भी हुआ है। गरीबों में भूमि वितरण (अनुच्छेद 39 ख) पर भी बात आगे बढ़ी है। अन्य निदेशक तत्वों पर भी प्रगति हुई है, लेकिन 'समान नागरिक संहिता' दूर की कौड़ी है। मूलभूत प्रश्न है कि आखिरकार एक राष्ट्र एक विधि और एक समान नागरिक संहिता का स्वाभाविक सिद्धांत लागू क्यों नही हो सकता?

समान नागरिक संहिता राष्ट्रीय एकता का मूलाधार है। संविधान निर्माता इस तथ्य से परिचित थे। संविधान सभा में इस पर जोरदार बहस हुई थी। संप्रदाय विशेष के सदस्य संहिता को अपने निजी मजहबी कानूनों में हस्तक्षेप मानते थे। वैसे संहिता का प्रवर्तन कोई हस्तक्षेप नहीं था। कानून निजी नहीं होते। दुनिया के सारे कानून राज और समाज की संवैधानिक संस्थाओं से जन्म लेते हैं और उन्हीं पर लागू होते हैं, लेकिन सभा के कुछ सदस्य राष्ट्रीय विधि के निर्माण में निजी कानूनों को ऊपर बता रहे थे। एक सदस्य मोहम्मद इस्माइल ने कहा 'यह उचित नही कि लोगों को उनके निजी कानून छोड़ने के लिए मजबूर किया जाए। महबूब अली ने कहा कि साढ़े तेरह सौ साल से मुसलमान इसी कानून पर चलते रहे हैं। हम अन्य प्रणाली मानने से इन्कार कर देंगे। बी पोकर ने कहा कि 'अंग्रेजों ने निजी कानूनों को मानने की अनुमति दी थी। इस बात को काटते हुए अल्लादि स्वामी अय्यर ने कहा 'अंग्रेजों ने पूरे देश में एक ही आपराधिक कानून लागू किया। क्या उसे लेकर मुसलमानों ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया?

पंथिक विश्वास नितांत निजी आस्था है, लेकिन संविधान सभा में पंथिक विश्वास को निजी कानून की शक्ल में पेश किया गया। कहा गया है कि 'समान नागरिक संहिता अल्पसंख्यकों के विरुद्ध अन्याय है। के0एम0 मुंशी ने कहा किसी भी उन्नत देश में अल्पसंख्यक समुदाय के निजी कानून को अटल नहीं माना गया कि व्यवहार संहिता बनाने का निषेध हो।' उन्होंने तुर्की ओर मिस्त्र के उदाहरण दिए कि 'इन देशों में अल्पसंख्यकों को ऐसे अधिकार नहीं मिले।

हमारी महत्वपूर्ण समस्या राष्ट्रीय एकता है। हम वास्तव में एक राष्ट्र हैं। मुस्लिम मित्र समझ लें कि जितना जल्दी हम अलगाववादी भावना को भूलते हैं उतना ही देश के लिए अच्छा होगा। डॉ. आंबेडकर ने कहा 'मैं इस कथन को चुनौती देता हूँ कि मुसलमानों का निजी कानून, सारे भारत में अटल तथा एक विधि था। 1935 तक पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत में शरीयत कानून लागू नहीं था। उत्तराधिकार तथा अन्य विषयों में वहां हिंदू कानून मान्य थे। उसके अलावा 1937 तक संयुक्त प्रांत, मध्य प्रांत और बंबई जैसे अन्य प्रांतों में उत्तराधिकार के विषय में काफी हद तक मुसलमानों पर हिंदू कानून लागू था। मैं असंख्य उदाहरण दे सकता हूँ। इस देश में लगभग एक ही व्यवहार संहिता है एकविधि है। इस अनुच्छेद को विधान का भाग बनाने की इच्छा सुधार की है। वह पूछने का समय बीत चुका है कि क्या हम ऐसा कर सकते हैं? इसके बाद मतदान हुआ। संहिता का प्रस्ताव जीत गया। संहिता संविधान का हिस्सा बनी।

समूचा भारत समान नागरिक संहिता के पक्ष में है। अंबेडकर के अलावा डॉ0

राम मनोहर लोहिया भी इसके समर्थक थे। पर्सनल लॉ की बातें कालवाह्य हो रही हैं। समान नागरिक संहिता का विरोध करने के लिए ही 1972 में मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड बनाया गया था। बोर्ड राष्ट्र सर्वोपरिता में विश्वास नहीं करता। वह विधि सर्वोच्चता का सिद्धांत भी नहीं मानता। इसका विश्वास 'पर्सनल लॉ' में है, लेकिन बढ़ते राष्ट्रवाद के कारण इसका प्रभाव नगण्य हो चुका है। कुछेक दल वोट लोभ में संहिता के विरोधी हैं। वे चर्चित शाहबानों मामले में अदालती फैसले के खिलाफ थे। तब उस फैसले के निष्प्रभावी बनाने वाला कानून बना। ऐसे दल राष्ट्रीय महत्वकांक्षा की तुलना में थोक वोट बैंक को ज्यादा तरजीह देते हैं। वे एक देश में दो तरह के कानूनों के पक्षधर है।

भारत बदल रहा है। तीन तलाक पर कानून बन गया है। अनुच्छेद 370 का अलगाववादी प्रेत अब अतीत बन चुका है। राष्ट्र सर्वोपरि अस्मिता है। संविधान भारत का राजधर्म और भारतीय संस्कृति भारत का 'राष्ट्रधर्म' प्रत्येक भारतवासी संविधान और विधि के प्रति निष्ठावान है। अपने विश्वास और उपासना में रमते हुए संविधान का पालन साझा जिम्मेदारी है। एक देश में एक ही विषय पर दो कानूनी विकल्पों का कोई औचित्य नहीं। अखिरकार एकताबद्ध राष्ट्र में 'निजी कानून' का मतलब क्या है। नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में देश में आशा और उमंग का महौल है। राष्ट्रवादी संगठन पहले से ही भारत में ऐसी संहिता के पक्षधर हैं। सर्वोच्च न्यायालय के ध्यानाकर्षण से संहिता पर फिर से विमर्श का अवसर आया है। दलतंत्र राष्ट्रीय अभिलाषा पर ध्यान दें। निजी कानून के आग्रही मित्र देश और काल का आह्वान सुनें। संविधान निर्माताओं की इच्छा का सम्मान करें।

**(लेखक उत्तर प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष हैं)**

❍❍❍

# स्वामी विवेकानन्द का सन्देश

❑ आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री

किसी महापुरूष को स्मरण करने का उद्देश्य यही होना चाहिए कि हम उनके तेजोमय जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर अपने जीवन को सार्थक करें। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जब हमारे देश के नवशिक्षित लोग विदेशी चमक–दमक से चौंधिया कर, उसके मोहक प्रभाव में पड़कर अपना सर्वस्व त्याग पश्चिम का अन्धानुकरण करने को उद्यत हो रहे थे तब आत्मगौरव एवं आत्मविश्वास के मूर्त रूप स्वामी विवेकानन्द ने हमारा दिशा निर्देश किया था। युगों की ग्लानि और हीनभाव से मुक्त कर हमें अपने वास्तविक स्वरूप की उपलब्धि करायी थी। अतः यह आवश्यक है कि हम पुनः उनके सन्देश को स्मरण कर विभ्रान्तकारी आकर्षणों के मायाजाल को काटकर उनके दिखाये रास्ते पर चलते रहें।

क्या है विवेकानन्द का मूलभूत सन्देश? उन्होंने उसे एक छोटे से सूत्र मे बांध दिया है‘आत्मनो मोक्षार्थ जगद्धिताय च’। चिन्तनशील व्यक्तियों के मन में ये प्रश्न उठते ही हैं कि हम क्या करें जिससे हमारा जीवन चरितार्थ हो जाये, हम क्यों जिये कैसे जिये। विवेकानन्द का उत्तर है कि हमारे जीवन की चरितार्थता इसी बात मे है कि हम अपने मोक्ष के लिये जगत् के हित के लिये, मंगल के लिये जियें। भारतीय दृष्टि के अनुसार मोक्ष परम पुरूषार्थ है, उसे समझने के पहले पुरूषार्थ को समझना होगा।

पुरूषार्थ शब्द का प्रयोग कभी–कभी घनघोर परिश्रम, कठिन उद्यम के अर्थ में भी होता है किन्तु वह उसका गौण अर्थ है। उसका मूल अर्थ उसकी व्युत्पत्ति से स्पष्ट होता है, ‘पुरूषैः अर्थ्येते इति’ जो पुरूषों अर्थात् मनुष्यों द्वारा चाहा जाये वह। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्यों का सर्व प्रधान काम्य है सुख। अनुभव बताता है कि भौतिक सुख की प्राप्ति एक बड़ी सीमा तक अर्थ पर निर्भर है। अर्थ का सीधा–सादा मतलब है आवश्यकताओं की पूर्ति का विनिमय मूलक साधन यानी धन दौलत? अतः अर्थ को भारतीय चिन्तकों ने एक पुरूषार्थ के रूप में स्वीकार किया पर यह भी स्पष्ट है कि अर्थ साधन ही है, साध्य नहीं। अर्थ प्राप्ति से सुख का बोध इसीलिये होता है कि हम इसके द्वारा अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। कामोपयोग के साधन के रूप में अर्थ का महत्व स्वतः सिद्ध है।

इसीलिये लोग सुरक्षा और कामोपभोग के लिये अर्थ–संग्रह पर बहुत बल देते हैं। किन्तु यह भी स्पष्ट है कि हमारा सारा अर्थ हमारी सारी धन दौलत हमारे बाहर है और वह हमे पहचानती तक नहीं फिर वह साधन ही है, उसे साध्य मानना बुद्धि

का विभ्रम ही कहा जायेगा। सुख की पहली और सबसे स्थूल अनुभूति होती है इन्द्रियों और विषयों के अनुकूल संयोग द्वारा। आंख को सुन्दर रूप, कान को मधुर शब्द, नाक को मोहक सुगन्ध, रसना को सुस्वादु भोजन और त्वचा को कोमल स्पर्श अच्छा लगता है। इन्द्रिय, मन और बुद्धि के स्तरों पर आत्मवश अनुकूल वेदनीयता उत्तरोत्तर सूक्ष्म और उन्नततर सुखाननुभूति जगाती है, इसमें कोई सन्देह नहीं इसीलिये भारतीय चिन्तकों ने विषय सुखों के उपभोग के साथ–साथ साहित्य, संगीत, नृत्य, नाट्य, चित्र आदि के उपभोग के द्वारा प्राप्त सुखों को भी काम पुरूषार्थ के अन्तर्गत ही माना है। स्वामी विवेकानन्द के समय अर्थ और काम के प्रति उद्दाम लालसा समाज के प्रभावशाली वर्ग में विद्यमान थी। भूमंडलीकरण और उदारीकरण का जो कुप्रभाव हमारे आज के समाज पर पड़ा है वह यही है कि लोग जल्दी से जल्दी ज्यादा रूपया कमाकर मौजमस्ती करना चाहते हैं, इसीलिये भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा है। निर्लज्ज अवैध 'अर्थ और काम' की उपासना से क्या वास्तव मे सुख मिल सकता है?

**धर्म का आश्रय अनिवार्य :** स्वामी विवेकानन्द का स्पष्ट उत्तर है, नहीं। उन्होंने कई स्थलों पर पश्चिम और पूर्व की तुलना की है और दोनों की कमियों की ओर इंगित किया है। उन्होंने कहा है कि पश्चिम में बहुत धन है, सुख समृद्धि के असंख्य साधन हैं, प्रचुरता है, विलासिता है किन्तु गहरे उतरने पर लगता है कि उन सबके भीतर रोदन है, अभाव अशांति है, हाहाकार है, छटपटाहट है। क्योंकि भीतरी अभाव को अर्थ और काम से भरा नहीं जा सकता। अर्थ और काम के प्रचुर उपभोग के बावजूद वह अभाव बना रहता है। अतः अशान्ति भी बनी रहती है। दूसरी तरफ उन्होंने अपने समय के भारत को भी भलीभाँति देखा–परखा था। संन्यास लेने के बाद उन्होंने तीन वर्षों तक पूरे भारत में भ्रमण किया था परिव्राजक के रूप में? उन्होंने अनुभव किया था कि वेदान्त के उच्च ज्ञान के बावजूद भारत में अशिक्षा है, अन्धविश्वास है, छुआछूत की हृदयहीनता है, घनघोर गरीबी है। केरल में अस्पृश्यता की असह्य यंत्रणा से क्षुब्ध होकर उन्होंने कहा था यह पागलों का प्रदेश है। पूरे भारत को मथकर विवेकादन्द ने फिर भी यह निष्कर्ष निकाला था कि भारतीय समाज बाहर से तो आर्त्त है, आतुर है, पीड़ित है, गरीब है, अशिक्षित है किन्तु अब भी उसका मन स्वस्थ है। अब भी वह समझता है कि मनुष्य अन्याय से, अवैध पद्धति से धन–संचय कर कामोपभोग कर सुखी नहीं हो सकता, सुखी होने के लिए धर्म का आश्रय अनिवार्य है।

पूर्व और पश्चिम दोनों की सीमाओं को समझकर ही विवेकानन्द ने यह निश्चय किया था कि हमें पूर्व और पश्चिम को पास लाना होगा। पूर्व को पश्चिम के भौतिक ज्ञान–विज्ञान और आर्थिक समृद्धि की आवश्यकता है, एवं अर्थकामपरायण पश्चिम

को धर्म का आश्रय लेना होगा। अर्थ और काम के प्रति असफल व्यक्ति धर्म की ओर उन्मुख नहीं हो सकता। इसीलिए रामकृष्ण परमहंस कांचन और कामिनी के त्याग की बात कहते थे। यहाँ कामिनी के त्याग का अर्थ काम का त्याग है, नारी की निन्दा यहाँ अभीष्ट नहीं है। नारी साधिका कंचन और कामी के त्याग की बात बेखटके कह सकती है। विचार करने पर लगेगा कि अर्थ हमारे बाहर है, काम का अवस्थान इन्द्रियों और मन में है एवं धर्म उससे भी सूक्ष्म है, उसकी स्थिति शुद्ध बुद्धि या विवेक में है। इसीलिए भारत का चिन्तक कहता है कि अर्थ और काम की सिद्धि धर्म के द्वारा होनी चाहिए तभी सुख मिलेगा। अधर्म से प्राप्त अर्थ और काम तो दुःख का मूल ही है। महाभारत की स्पष्ट घोषणा है 'धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते' अर्थात् जिस धर्म से उपलब्ध अर्थ और काम सुख के व्यवहारिक हेतु बनते हैं, उस धर्म का सेवन मनुष्य क्यों नहीं करते? अभिप्राय यही है कि धर्म द्वारा ही अर्थ और काम की उपलब्धि कर मनुष्य इस जगत् में सुखी हो सकता है।

**सेवा धर्म** : स्वामी विवेकानन्द ने जिस धर्म पर सबसे अधिक बल दिया है वह सेवा धर्म है। उनके गुरू रामकृष्ण परमहंस ने उन्हें शिक्षा देते हुए कहा था, 'जीवे दया नय, शिवज्ञाने सेवा' अर्थात् जीवों पर दया करने का भाव उचित नहीं है, इससे तुम्हारे मन में अहंकार आ सकता है। तुम्हें तो यह समझना चाहिए कि परमात्मा ही समस्त जीवों में.... सृष्टि के कण–कण में व्याप्त है। अतः जीवों को शिव.... परमात्मा मानकर उनकी सेवा करनी चाहिए। इसीलिए विवेकानन्द ने अपने शिष्यों के सामने सेवा का आदर्श प्रस्तुत करते हुए कहा था 'दरिद्र देवो भव, मूर्ख देवो भव'। लक्ष्मीनारायन के देश में दरिद्रनारायण की स्थापना कर अपने शिष्यों को विवेकानन्द ने प्रेरणा दी थी कि तुम लोग विनम्रतापूर्वक दरिद्रों की सेवा करो, उन्हें दरिद्रता से ऊपर उठने के उपाय बताओ, अशिक्षितों को शिक्षित बनाओ, रोगियों की चिकित्सा करो। प्लेग की महामारी के समय स्वयं विवेकानन्द ने प्लेग से पीडितों की सेवा की थी। आज भी रामकृष्ण मिशन शिक्षा, चिकित्सा आदि सेवा के क्षेत्रों मे अभूतपूर्व कार्य कर रहा है।

सच कहा जाये तो विवेकानन्द के लिये धर्म भी एक पड़ाव ही था, लक्ष्य नहीं। धर्म की अवस्थिति तो शुद्ध बुद्धि में ही है। उनकी दृष्टि तो उस पर थी, जो बुद्धि के भी परे है ''यो बुद्धेः परतस्तु सः''। वे परम सत्य का साक्षात्कार करना चाहते थे। इसीलिये वे चढती जवानी में सबसे पूछते फिरते थे कि क्या आपने ईश्वर देखा है? महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर ने भी स्वीकार किया था कि मैंने ईश्वर के दर्शन नही किये हैं। सिर्फ रामकृष्ण परमहंस ने उनसे कहां हां मैंने ईश्वर को देखा है, उन्होंने यह भी कहा कि मैं तुम्हे भी ईश्वर के दर्शन करा सकता हूँ। गुरूजी के कृपा से विवेकानन्द ने भी ईश्वर के दर्शन किये। वेद की उक्ति है ' 'तदपश्यत् तदभवत् तदासीत्।' उसे

देखा, वही हो गया, वही था? किसी को देखने या जानने से अगर कोई वही हो जाता है, तो वह वास्तव में वही था, केवल अज्ञान के कारण अपने को कुछ और मान बैठा था। विवेकानन्द भी नाम और रूप से ऊपर उठकर वही हो गये और शंकराचार्य के समान ही अनुभव करने लगेः

मनोबुद्धयहंकारचित्तानि नाहं, न च श्रोत्रजिह्वे न व घ्राणनेत्रे।

न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायुः, चिदानन्दरूपः शिवोहं शिवोऽहम्।

अर्थात् मैं न मन हूँ, न बुद्धि, न चित्त, न अहंकार, न कान हूँ, न जीभ, न नाक, न आंख, न आकाश हूं, न भूमि, न तेज (अग्नि), न वायु, मैं तो चिदानन्द रूप शिव हूँ। पंच महाभूत इन्द्रिय अन्तःकरण आदि से ऊपर उठकर अपने को आत्मस्वरूप अनुभव करना ही मुक्त हो जाना है, मोक्ष को प्राप्त कर लेना है। तब न कर्तव्य का अहंकार रह जाता है, न कर्मफल प्राप्त करने की स्पृहा। नाम और रूप के प्रति अनासक्ति आत्मस्वरूप की चेतना को जागृत रखती है। इसी जीवन्मुक्त स्थिति में विवेकानन्द ने अपना संन्यासी जीवन जिया।

कन्याकुमारी के शिलाद्वीप मे ध्यानमग्न विवेकानन्द को प्रतीत हुआ कि श्री रामकृष्ण परमहंस पैदल समुद्र पार कर रहे हैं और उन्हें भी समुद्र पार करने की प्रेरणा दे रहे हैं। इस अनुभव से उन्हें लगा कि उन्हें शिकागो मे आयोजित होने वाले विश्व धर्म सम्मेलन मे जाना चाहिए। उन्होंने अपने मद्रासी शिष्यों से चर्चा की। उनके द्वारा एकत्रित धनराशि काफी कम थी, अमेरिका के टिकट की कीमत की तुलना में। विवेकानन्द ने कहा इस राशि को गरीबों में बांट दो। मां को मुझे अमेरिका भेजना होगा तो वे स्वयं व्यवस्था करेंगी। उन्होंने सचमुच व्यवस्था कर दी। उनके शिष्य खेतड़ी नरेश अजीत सिंह ने उनके अमेरिका जाने का प्रबन्ध कर दिया। विवेकानन्द को अमेरिका पहुंचने पर ज्ञात हुआ कि वे न किसी धार्मिक संस्था के प्रतिनिधि है, न उनके पास किसी धर्मगुरू का दिया परिचय पत्र ही है। अतः वे धर्म सभा में स्थान ग्रहण नहीं कर पायेंगे। वे कुछ परेशान जरूर हुए होंगे पर विचलित नहीं हुए। वे अपना प्रिय श्लोक गुनगुनाने लगेः

किंनाम रोदिषि सखे तवयि सर्वशक्तिः, आमंत्रयस्व भगवन् भगवंस्वरूपम्।

त्रैलोक्यमेतदखिलं तव पादमूले, आत्मैव हि प्रभवते न जड़ः कदाचित्।।

अर्थात् हे सखे तू क्यों रो रहा है, तुझ में समस्त शक्तियां निहित हैं। अपने सर्वशक्तिमान स्वरूप का आवाहन कर? तीनों लोक तेरे चरण तले लौटेंगे। आत्मा ही विजयिनी होती है, जड़ शक्तियां नहीं। और वैसा ही हुआ। शिकागो की धर्म सभा में उन्हे सादर बोलने के लिये आमंत्रित किया गया। और अपने सम्बोधन अमेरिकावासी मेरी बहनों और भाइयों से ही उन्होंने श्रोताओं को जीत लिया।

अमेरिकी श्रोताओं ने सोचा जरूर यह कोई विलक्षण व्यक्ति है जो हमें बहन मानता है, भाई मानता है, गैर नहीं समझता, पराया नहीं समझता। लोग भावाभिभूत हो गये, दो मिनटों तक तालियां ही बजती रहीं। विवेकानन्द उस धर्म सभा के सर्वाधिक प्रभावी वक्ता सिद्ध हुए।

**मोक्ष का अर्थ**— मोक्ष का अर्थ होता है छुटकारा। प्रश्न उठता है कि किससे छुटकारा एवं कैसे मिलता है यह छुटकारा? विवेकानन्द का उत्तर है मोक्ष का अर्थ है, अज्ञान से छुटकारा एवं प्रकृति के बन्धन से छुटकारा। उन्होंने बार–बार समझाया है कि जब हम अपने वास्तविक चैतन्य स्वरूप को भूलकर अपने को नाम, रूप से आबद्ध छोटी सी इकाई मान लेते हैं तभी हमारे दुखों की उत्पत्ति होती है। उनका कहना था कि मोक्ष की प्राप्ति के लिये अपने सीमित होने के अज्ञान प्रसूत भाव का त्याग कर विश्वव्यापी सच्चिदानन्दमयी निर्गुण सत्ता से अभेद स्थापित करने के लिये 'तत्तवमसि' महावाक्य को आत्मसात् करना होगा, वही हो जाना होगा क्योंकि हम वास्तव में वही हैं, केवल अज्ञान के कारण अपने को सीमाबद्ध मानते हैं। उनका कहना था कि त्याग के मार्ग पर चलकर ही हम इस लक्ष्य तक पहुंच सकते हैं। इसीलिये उनकी शिष्या भगिनी निवेदिता ने अपने बालिका विद्यालय का आदर्श वाक्य रखा था, 'त्यागाज्जायते शक्तिर्भगवती' त्याग के द्वारा ही भगवती शक्ति का उदय होता है। दुनिया के साधारण लोग त्याग के विपरीत परिग्रह के रास्ते पर चलते हैं। कहा जा सकता है 'परिग्रहाज्जायते शक्तिर्भोगवती' अर्थात् परिग्रह से भोगवती शक्ति का उदय होता है। पहला यदि श्रेय का मार्ग है तो दूसरा प्रेय का मार्ग। पहला रास्ता तलवार की धार पर चलने के समान दुर्गम है कठिन है किन्तु वही मोक्ष का रास्ता है, असीम आनन्द प्राप्त करने का रास्ता है। दूसरे रास्ते पर चलने वाले को विषय सुखों की प्राप्ति हो सकती है, किन्तु वे सुख की भ्रान्ति मात्र हैं। वस्तुतः गहन दुखों की जड़ हैं, बन्धन मे डालने वाले हैं। सर्वत्यागी सन्यासी को ही मोक्ष मिल सकता है। जो विवेकशील मानवों को प्राप्त करना ही चाहिए। विवेकानन्द का यही संदेश मूर्त हो उठा है—'आत्मनो मोक्षार्थ' के रूप में जीने के उनके आह्वान में।

किन्तु विवेकानन्द यहीं नही रूकते। कई बार लगता है कि विवेकानन्द ज्ञानमार्गी हैं इसमें कोई संन्देह नहीं कि वे ज्ञानी हैं किन्तु शुष्क ज्ञानी नहीं हैं वे। सारी सृष्टि दुखों से तड़पती रहे और मैं अकेला मुक्त हो जांऊ यह बात उन्हें स्वीकार नहीं थी। याद आ रहा है श्रीमद्भागवत् में आयी प्रहलाद् स्तुति का यह श्लोकः

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामाः, मैनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः।
नैतान्विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एको, नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये।।

अर्थात् देव मुनिजन प्रायः अपनी ही मुक्ति की इच्छा से एकान्त में रहकर मौन धारण किये रहते हैं, दूसरों के हित के लिये तत्पर नहीं होते, किन्तु इन दीन दुखियों को छोड़कर मैं अकेला स्वयं मुक्त हो जाऊं ऐसा मैं नही चाहता। और आपके सिवाय कोई दूसरा इन भटकने वालों का उद्धार कर सकता है यह भी मैं नही मानता। अतः मेरी प्रार्थना है कि आप इन का भी उद्धार करें। इसी भाव की महिमा विवेकानन्द में भी परिलक्षित होती है। वे नहीं चाहते थे कि संसार के लोग विविध पीड़ाओं से भले ग्रस्त रहें और मैं मुक्त हो जाऊं। इसीलिये उनका सन्देश है कि हमारा जीवन जन–गण के हित के लिये, मंगल के लिये व्यतीत होना चाहिए, केवल अपने कल्याण के लिये नहीं। यह भी द्रष्टव्य है कि उनकी परिधि में केवल उनकी जाति, धर्म, देश के लोग नहीं आते, सारा जगत आता है। जिसने सब प्राणियों में अपने को और अपने में सब प्राणियों को प्रत्यक्ष कर लिया हो वह तो सबों का ही हित चाहेगा। यह हित उनकी पीड़ा अशिक्षा दरिद्रता आदि को दूर करने की सेवा से शुरू होता है और उन्हें मोक्ष प्राप्त कराने की सीमा तक जाता है क्योंकि किसी का भी सर्वोच्च हित उसे अपने स्वरूप का बोध करा देने में ही निहित है।

स्पष्टतः स्वामी विवेकानन्द का यह सन्देश किसी काल या देश तक सीमित नहीं है। यह सच्चे अर्थों में सार्वकालिक है, सार्वभौम है, सार्विक है अर्थात सब कालों के लिये सब देशों के लिये सब प्राणियों के लिये है। फिर भी यह लक्षणीय है कि विवेकानन्द का जीवन इसी सन्देश के अनुरूप व्यतीत हुआ है। जो उन्होंने कहा है वही किया है। अतः हम सब उनके इस सन्देश को अपने व्यवहारों मे मूर्त करें। जितनी हमारी शक्ति है, उतनी मात्रा में इस सन्देश को अपने जीवन मे उतारें। श्रेय के मार्ग पर चलने वाले निःश्रेयस की प्राप्ति करते ही हैं, इस विश्वास के साथ इस पथ पर चलना शुरू करें। विवेकानन्द के जीवन और सन्देश से हम यही प्रेरणा ग्रहण करें तो हमारा जीवन भी धन्य हो जायेगा।

○○○

# भारतीय युवाओं के लिए विवेकानन्द की प्रासंगिकता

❑ **सुभाष सेतिया**

भारत की जनसंख्या के वर्तमान स्वरुप पर नज़र डालते हैं तो हम निस्संदेह यह कह सकते हैं कि भारत युवाओं का देश है। कुल आबादी में आधी से अधिक संख्या 18 से 35 वर्ष के लोगों की है जो किसी भी समाज या राष्ट्र की रीढ़ होते हैं। यह वह उम्र है जो ऊंची कल्पना और संकल्प से ओतप्रोत होने के कारण व्यक्ति व देश की प्रगति की गाड़ी को मजबूत हाथों तथा प्रखर प्रतिभा के बल पर आगे बढ़ाने में सक्षम होती है। ऐसा माना जाता है कि सृजनशील लोग अपना सर्वश्रेष्ठ अवदान 40 वर्ष की आयु तक ही दे देते हैं। बाद की आयु में वे उसी नींव पर नई इमारतें खड़ी करते हैं, किन्तु यही वह आयु है जिसमें सही दिशा,संस्कार और मार्गदर्शन न मिले तो युवा भटकाव का शिकार होकर अपने जीवन की गाड़ी पटरी से उतार बैठते है और निर्माण की बजाय विनाश की राह पर चल पड़ते हैं। इसलिए पुरानी पीढ़ी का यह कर्तव्य है कि वे नई पीढ़ी का सही मार्गदर्शन करें और उसे अपनी शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक शक्ति एवं कौशल का विकास करने के अवसर प्रदान करें। युवा पीढ़ी के शिक्षण–प्रशिक्षण में शिक्षाप्रद साहित्य तथा प्रतिष्ठित व सम्मानित महापुरुषों के जीवनवृत्त भी अत्यन्त उपयोगी भूमिका निभाते हैं।

हमारे देश के ऐसे ही एक महापुरुष हैं स्वामी विकेकानन्द, जो पिछली एक सदी से भी अधिक समय से हर युग की युवा पीढ़ी के लिए दीप स्तंभ बने रहे हैं। विवेकानन्द स्वयं ही युवा सन्यासी के रुप में समाद्रित हैं क्योंकि वे युवावस्था अर्थात 39 वर्ष की आयु में ही भारत तथा मानवता को देशभक्ति,समाज सुधार और अध्यात्म का अनूठा संदेश देकर इस संसार से विदा हो गए, इसलिए भारत सरकार ने उनके जन्मदिन 12 जनवरी को युवा दिवस के रुप में मनाने का फैसला किया। जाहिर है कि स्वामी जी का व्यक्तित्व, कृतित्व और उनके संदेश–उपदेश आज की युवा पीढ़ी के लिए उनके जीवनकाल से भी अधिक प्रासंगिक हैं क्योंकि आज की दुनिया 20वीं सदी के प्रारंभिक वर्षो की तुलना में कहीं अधिक दिग्भ्रमित, तनावपूर्ण और संकटग्रस्त है। संसार को इस त्रासद स्थिति से उबारने के प्रयासों में स्वामी जी का जीवन निश्चय ही सार्थक भूमिका निभा सकता है। उनके जीवन में देशभक्ति, धर्म, समाज, विश्वदृष्टि, अध्यात्म् योग, वेदांत दर्शन, सहिष्णुता, सर्वधर्म समभाव आदि सभी पहलू आज के युवाओं को अच्छा और निष्ठावान भारतीय बनने की प्रेरणा देते हैं। सच तो यह है कि उनका जीवन हमारे समाज को आज की सभी समस्याओं से मुक्ति की राह दिखाता है। जिन मसलों से आज का युवा वर्ग जूझ रहा है उनमें से कुछ पर तो स्वामी जी ने पहले से ही दूरदर्शिता दिखाते हुए रास्ता सुझा दिया था।

हमें यह याद रखना होगा कि विवेकानंद पहले देशभक्त थे और बाद में

सन्यासी। वास्तव में धर्म का सही रुप भारत के लोगों के सामने रखने और विदेशों में भारत की नकारात्मक छवि को उज्ज्वल करने की उत्कंठा ने ही उनसे वह सब कराया जिसे याद करके हम उन्हे देश के शीर्षस्थ महापुरुषों की पंक्ति में बिठाते हैं। किन्तु उनकी देशभक्ति और अपने धर्म के प्रति श्रध्दा एवं आस्था ने उनके तर्कशील और उदार दृष्टिकोण पर कभी ग्रहण नहीं लगाया। वे प्रवृति और चिंतन से सहिष्णु, दूसरो के विचारों का सम्मान करने वाले और सभी संस्कृतियों व धर्मों में समानता के दर्शन करने वाले व्यक्ति थे। उन्होंने इसाइयों के देश ब्रिटेन और अमेरिका में जाकर भारत में धर्म प्रचार में लगे इसाई मिशनरियों की कार्यप्रणाली की तीखी निन्दा की और इसके लिए वहां के अनेक लोगों के विरोध को झेला, किन्तु उनके मन में ईसाइयों या ईसा मसीह के प्रति कभी विद्वेष या घृणा का भाव नहीं उपजा। अमरीका में अनेक गिरजाघरों और ईसाई, प्रतिष्ठानों मे उनके व्याख्यान व प्रवचन हुए। वे गौतम बुद्ध को अपना आदर्श मानते थे और अपने गुरु भाइयों को समझाते कि जिस प्रकार महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों को संसार भर में भेजकर धर्म प्रचार किया था उसी तरह हमें भी देश के उपेक्षित, अशिक्षित और सुप्त समाज को जगाने के लिए आश्रमों व मठों की चारदीवारी से बाहर निकलना चाहिए।

स्वामी जी का मानना था कि पूर्व और पश्चिम एक दूसरे के पूरक बन सकते हैं। पश्चिम अपनी भौतिक प्रगति के तरीके पूर्व को देकर वहां निर्धनता, अशिक्षा व अज्ञान दूर करने में सहयोग कर सकता है तो पूर्व अपने अध्यात्म और शांति के मूल्य पश्चिम को दे सकता है। इसी विचार को कार्यरुप देने के लिए उन्होंने पश्चिम के लोगों को भारत में काम करने को बुलाया तो भारत से अपने शिष्यों और गुरु भाइयों को पश्चिमी देशों में भेजा। उनकी इस समन्वयक सोच और आचरण के मूल में था उनका तर्कशील और वैज्ञानिक दृष्टिकोण। वे चार वर्ष तक अपने गुरु रामकृष्ण के पास जाते रहे किन्तु उन्होंने मूर्तिपूजा, अद्वैत दर्शन और ईश्वर के वैयक्तिक रुप की गुरुता की बातों को तब तक स्वीकार नहीं किया जब तक वे स्वयं पूर्णतया आश्वस्त नहीं हो गए। यह उनकी तर्कशीलता और स्थापित मूल्यों से बंधे रहने की सोच के प्रति विद्रोह ही था जिसने उन्हें संन्यासी जीवन की नई व्याख्या करने का साहस दिया। स्वामी जी संन्यासी वेश धारण करके भी अपने अंतस में आधुनिक बने रहे। इसलिए वे परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व को व्यवहार की तुला पर ही तोल कर सुलझाते थे। वे अद्वैतवादी होते हुए भी द्वैत मत के अनुसार काली पूजा कर सकते थे। तीर्थयात्रा और अन्य रुढ़ियों की व्यर्थ बताने के बावजूद जो उनकी मां का दिल रखने को वे चले गए। इसी प्रकार जब वे देशाटन करते हुए कश्मीर पहुंचे तो भगिनी निवेदिता को साथ लेकर अमरनाथ यात्रा पर निकल गए और वहां शिवलिंग की पूजा–अर्चना की। विवेकानन्द का मूल उद्देश्य समाज और देश का उद्धार करना था और इसमें उनके व्यक्तिगत आग्रह या दृष्टिकोण कभी बाधक नहीं बनते थे। तभी तो वे युवकों से यह तक कहने की हिम्मत जुटा सके कि

घर बैठकर गीता पढ़ने की बजाय मैदान में फुटबाल खेलकर आप ईश्वर को जल्दी प्राप्त कर सकते हैं। भौतिकता की अंधी दौड़ में शामिल आज की युवा पीढ़ी के लिए यह तर्कशीलता और संतुलित व्यवहार बुद्धि बहुत उपयोगी है, विवेकानन्द के जीवन से प्राप्त की जा सकती है।

सामाजिक न्याय, दलित उत्थान, और स्त्री सशक्तीकरण जैसे मुद्दे नई पीढ़ी को उद्वेलित करते हैं। कोई विश्वास नहीं करेगा कि विवेकानन्द ने 100 साल पहले ही इन समस्याओं को न केवल पहचान लिया था बल्कि उनके समाधान की रुपरेखा भी प्रस्तुत कर दी थी। स्वामी जी ने जातिवाद का खुलकर विरोध किया और रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों को निर्देश दिया कि वे उन लोगों की सेवा पर विशेष ध्यान दें जिन्हें समाज अछूत मानकर उपेक्षा करता है। हालांकि उन्होंने इस समस्या को हल करने के लिए कोई आंदोलन नहीं चलाया, किन्तु उस समय के वातावरण को देखते हुए अपने व्यवहार और आचरण से ऊंच–नीच का भेदभाव मिटाने का क्रांतिकारी संदेश देना अपने आप में कोई छोटी बात नहीं थी। वे इस तर्क को भी अस्वीकार करते थे कि धर्म कार्य का दायित्व केवल ब्राह्मण संभाल सकते हैं। गैर–ब्राह्मण युवको को संन्यासी बनाया और इस तरह धर्म में नई परंपरा का सूत्रपात किया। इसी तरह भारत में मार्क्सवाद या समाजवाद का दर्शन आने से पहले ही विवेकानन्द ने मार्क्स की विचारधारा के अनुरुप गरीबों और मजदूरों के हितों की वकालत करने और अमीर–गरीब का भेद मिटाकर सामाजिक समानता व समरसता की आवश्यकता पर बल दिया। गरीबों को समाज में समानता का स्थान दिलाने के लिए उन्होंने 'दरिद्रनारायण' शब्द की रचना की।वे अपने साथियों से कहते थे कि ये मजदूर, किसान और मेहनतकश लोग ही समाज की रीढ़ हैं इसलिए ये ईश्वर का रुप हैं। अंतिम दिनों में अस्वस्थ रहने के कारण जब उनका आश्रम से बाहर आना–जाना बन्द हो गया तो वे पूरा समय आश्रम के संन्यासियों के बीच ही गुजारते थे। उन दिनों आश्रम किसी निर्माण कार्य के लिए संथाल आदिवासी मजदूर के रुप में काम कर रहे थे। स्वामी जी उन मजदूरों के पास जाकर बैठते और उनका दुःख–दर्द सुनते। एक बार उन्होंने सभी मज़दूरों को अपने हाथ से खाना खिलाया।

आज के अनेक समाज सुधारकों की तरह विवेकानन्द समाज में स्त्रियों की स्थिति को लेकर बहुत चिंतित थे। वे पश्चिम में स्त्रियों के लिए सम्मानजनक स्थान तथा सामाजिक गतिविधियों में उनकी समान भागीदारी से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने अमेरिका प्रवास के दौरान अपने एक गुरुभाई को लिखे पत्र में स्वीकार किया कि जब मैं यहां आया था तो मुझे पश्चिम की महिलाओं के बारे में बहुत सी ऊल–जुलूल बातें बताई गई थी किन्तु अब उनका मुझसे अधिक प्रशंसक कोई नहीं है। स्वामी जी को पश्चिम में मां जैसी कई महिलाएं और मारग्रेट नोबल यानी भगिनी निवेदिता लंदन में एक स्कूल की प्रिंसिपल थी और वे उन्हें लड़कियों की

शिक्षा के लिए भारत लाए थे। भगिनी निवेदिता पूर्णतया भारतीय बन गईं और अपने को स्त्री शिक्षा तथा रामकृष्ण आश्रम के कार्य के लिए समर्पित कर दिया। आज भी हमारे देश की लड़कियां, विशेषकर दलित और निर्धन परिवारों की लड़कियाँ, शिक्षा से वंचित रहती हैं और स्त्रियों की साक्षरता दर पुरूषों के मुकाबले काफी कम है। वे कहा करते थे कि हमारे देश में स्त्री शिक्षा का प्राचीनकाल से महत्व रहा है किंतु हमने अन्य सामाजिक कुरीतियों की तरह स्त्रियों के घर से बाहर निकलने और सामाजिक–धार्मिक कार्य करने पर प्रतिबंध लगा दिए। स्वामी जी अपने देश में गरीबी, अशिक्षा तथा उद्योग–धंधों के अभाव के कारण चिंतित रहते थे।

एक संन्यासी का इन सांसारिक झंझटों की चिंता करना असंगत लग सकता है किंतु यही विसंगति ही विवेकानंद को देशभक्त और समाजसेवी योद्धा संन्यासी बनाती है। अपनी विभिन्न यात्राओं के समय वे कई राजाओं, नरेशों, दीवानों तथा उच्च अधिकारियों के अतिथि बनें। वे इन अवसरों पर अपने मेज़बानों को विद्यालय खोलने, विज्ञान की शिक्षा शुरु करने और नए उद्योग–धंधे लगाने का सुझाव देते। कई राजाओं ने उनकी बात मानकर अपने यहां नए स्कूल,कालेज खोले। बेरोजगारी और शिक्षा के गिरते स्तर के संदर्भ में उनके ये प्रयास नई प्रेरणा का संचार करते हैं। वे शिक्षा और ज्ञान को समाज के उत्थान की कुंजी मानते थे। वे अपने शिष्यों को गांवों में शिक्षा का प्रबंध करने के लिए कहते थे। उनकी स्पष्ट धारणा थी कि शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान और कौशल के साथ लोगों में अच्छे संस्कार, आत्मविश्वास और उच्च विचार विकसित करना होना चाहिए। अपने देश में विज्ञान की शिक्षा की उपेक्षा का उन्हें दुःख था। वे मानते थे कि विज्ञान की शिक्षा से व्यक्ति तर्कशील, निष्पक्ष और संतुलित दृष्टि से सम्पन्न बनता है। उन्होंने स्वयं विज्ञान का अध्ययन किया था। वे जितना बल योग, साधना और आत्मानुभूति पर देते थे उतना ही समाज की आर्थिक प्रगति, खेलकूद, कृषि और उद्योगों के विकास पर देते थे। एक बार उन्होंने आश्रम में अपने शिष्यों से कहा कि आपको जितनी दक्षता योग और साधना में होनी चाहिए उतनी ही खेतों में काम करने में होनी चाहिए। साधना करने की तरह आपको कृषि की उपज बेचना भी आना चाहिए। वे श्रम की महिमा को समझते थे और स्वयं आश्रम के रोजमर्रा के कामों में हाथ बंटाते थे। इन सभी मूल्यों की ही आज की पीढ़ी को महती आवश्यकता है।

इस प्रकार विवेकानन्द का चिंतन और कृतित्व युवा पीढ़ी को न केवल आत्मिक शक्ति, आत्मविश्वास और आत्म सम्मान को सुदृढ़ करने की प्रेरणा देते हैं बल्कि उन्हें भौतिक व सांसारिक धरातल पर भी निरन्तर उपलब्धियां हासिल करने को प्रोत्साहित करते हैं। युवा पीढ़ी को उनका यह भी संदेश याद रखना होगा कि व्यक्ति विकास को समाज और देश के विकास से ऊपर मानकर न चलें क्योंकि व्यष्टि और समष्टि का समन्वय ही भारत को प्रगति के पथ पर अग्रसर करके उसे विश्व समुदाय में गौरवपूर्ण स्थान दिला सकता है।

○○○

## (जयन्ती ६ जनवरी पर विशेष)
# अभी भी जिंदा है कमलेश्वर की क्रांतिधर्मी रचनात्मक बेचैनी

❑ कृष्ण कुमार यादव

अजीब दिन थे/ नीम के झरते हुए फूलों के दिन/ कनेर में आती पीली कलियों के दिन/ न बीतने वाली दोपहरियों के दिन/ और फिर एक के बाद एक/लगातार बीतते हुए दिशाहीन दिन .......... अपने चर्चित उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में जब यह पंक्तियाँ कमलेश्वर ने लिखी होंगी तो सोचा भी नहीं होगा कि ऐसी ही किसी वसन्त ऋतु में वह इस संसार को अलविदा कह जायेंगे। एक बार आगरा विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित एक पुस्तक में अज्ञानतावश कमलेश्वर की मृत्यु की बात छाप दी गई तो उसके जवाब में उसी अंदाज के साथ उन्होंने तत्काल एक लेख लिखा– 'कमलेश्वर अभी जिंदा है।' कमलेश्वर एक ख्यातिलब्ध साहित्यकार, अदभुत कथाशिल्पी, बेजोड़ पत्रकार व कुशल पटकथा लेखक हैं। कभी अमृता प्रीतम ने इनके बारे में कहा था– ''यदि सलमान रूसदी को हिन्दी साहित्य के बारे में वाकई जानना है तो वे केवल कमलेश्वर कृत 'कितने पाकिस्तान' पढ़ लें।''

मोहन राकेश और राजेन्द्र यादव के साथ नई कहानी की त्रयी रहे कमलेश्वर का जन्म 6 जनवरी 1932 को उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जिले में हुआ था। वर्ष 1954 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम0 ए0 करने के बाद वे पटकथा लेखक के रूप में दूरदर्शन से जुड़ गए। अपने जीवन के इस लम्बे पड़ाव में कमलेश्वर ने हर क्षेत्र में अपना हुनर आजमाया। विहान, इंगित, नई कहानियाँ, सारिका, कथा यात्रा, श्री वर्षा और गंगा के सम्पादन से वे जुड़े तो बतौर पत्रकार 1990 से 1992 तक दैनिक जागरण और 1996 से 2002 तक दैनिक भास्कर पत्र से जुड़े रहे एवं इनका सम्पादन भी किया। 1980–82 तक उन्होंने दूरदर्शन के अतिरिक्त महानिदेशक का कार्यभार संभाला तो कई फिल्मों के संवाद और पटकथा को भी अपनी लेखनी से संवारा। इसमें सौतन, सौतन की बेटी,लैला, रंग–बिरंगी, मि0 नटवर लाल, मौसम, आँधी, राम–बलराम, साजन की सहेली, सारा आकाश, अमानुष, छोटी सी बात, आनंद आश्रम, रजनीगंधा, पति–पत्नी और वो एवम् द बर्निंग ट्रेन प्रमुख थीं। यही नहीं उन्होंने आकाश गंगा, दर्पण, रेत पर लिखे, एक कहानी, चन्द्रकांता, युग व बेताल–पचीसी सरीखे टी0 वी0 धारावाहिकों की पटकथा भी लिखी।

कमलेश्वर ने दर्जन भर उपन्यास व नाटक लिखे। इनमें लौटे हुए मुसाफिर, रेगिस्तान, सुबह–दोपहर–शाम, तीसरा आदमी, आगामी अतीत, इतने अच्छे दिन, देश–देशान्तर, समुद्र में खोया हुआ आदमी, डाक बंगला, एक सड़क सत्तावन गलियाँ, वही बात, काली आँधी, एक और चंद्रकान्ता एवम् कितने पाकिस्तान प्रमुख हैं। इसके

अलावा कमलेश्वर ने 300 से अधिक कहानियाँ लिखीं। उनकी पहली कहानी 1948 में प्रकाशित हुई पर 1957 में 'कहानी' पत्रिका में प्रकाशित 'राजा निरबंसिया' ने उन्हें रातों–रात प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँचा दिया। उनकी कहानियों में अपना एकान्त, जिंदा मुर्दे, बयान, तलाश, नागमणि, नीली झील, माँस का दरिया, आसक्ति, मुर्दों की दुनिया, कस्बे का आदमी, स्मारक, जार्ज पंचम की नाक, गर्मियों के दिन, खोई हुयां दिशायें, इतने अच्छे दिन, कोहरा, रावल की रेल, आजादी मुबारक एवम् दिल्ली में एक मौत अविस्मरणीय हैं। आलोचना के क्षेत्र में उनकी 'नई कहानी की भूमिका' और 'मेरा पन्नाः समानान्तर सोच' (दो खंड) महत्वपूर्ण पुस्तकें समझी जाती हैं तो खंडित यात्रायें, जलती हुयी नदी, यादों के चिराग, संस्मरण जो मैंने जिया एवं कश्मीरः रात के बाद इत्यादि यात्रा–संस्मरण भी उन्होंने लिखे। यही नहीं कमलेश्वर ने संकेत, नई धारा, मेरा हमदम–मेरा दोस्त इत्यादि हिन्दी, उर्दू, पंजाबी मराठी व तेलगु कथा संकलनों का भी सम्पादन किया।

कमलेश्वर समय की नब्ज को पहचानने में माहिर थे। उन्होंने अपने को एक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रखा वरन् साहित्य के अलावा पत्रकारिता, टी0 वी0 धारावाहिकों और सिनेमा माध्यमों से भी वे गहरे व जीवन्त रूप से जुड़े रहे। वे बीसवीं सदी के हिन्दी कहानीकारों में अग्रणी रहे। उनमें एक साथ प्रेमचन्द व फणीश्वरनाथ रेणु के गुणधर्मों का विकास देखा जा सकता है। उनकी जुबान ऐसी थी जिसने हिन्दी–उर्दू के बीच के भेद को मिटा दिया। एक बार उन्होंने कहा था कि– ''हिन्दी और उर्दू के गीतकार और गजलकार मिलकर देश में एक नई क्रांति ला सकते हैं, जो देश की जमीन पर भारतीय भाषाओं और संस्कृतियों की एकता का आगाज बन सकती है। सामाजिक शोषण से मुक्तसमाज की कल्पना हम तभी कर सकते हैं, जब हमारे कलमकार एक आवाज बनें, एक स्वर में देश की पीड़ा गायें और भेदभाव से परे एक मंच पर एकजुट होकर इस देश को एकता के सूत्र में बाँधें।'' साहित्य को वह परम्पराओं और सीमाओं में न बांधकर समग्र रूप में देखने के हिमायती थे। अपनी रचनाओं में एक तरफ उन्होंने शहरी जीवन की जटिल समस्याओं और संवेदनशून्यता तथा जीवन की धृष्टताओं को बखूबी रेखांकित किया तो समकालीन जीवन के जटिल प्रश्नों को सेकुलर दृष्टि से सुलझाने का भी प्रयत्न किया। इसके चलते जहाँ उनके लेखन में सहज सम्प्रेषणीयता आई, वहीं वे प्रयोगधर्मी भी बने रहे। अपनी रचनाओं में उन्होंने लोक शैली व उनसे जुड़े प्रतीकों का भी जीवन्त रूप में इस्तेमाल किया।

कमलेश्वर की सर्जनात्मकता पर समाज की विभिन्न प्रवृत्तियों और जीवन की विषम परिस्थितियों का भी गहरा प्रभाव पड़ा। वे सही मायने में कई आन्दोलनों का सूत्रपात करने वाले सामाजिक व सांस्कृतिक प्रवक्ता थे। जहाँ उन्होंने 'नई कहानी' आन्दोलन का सूत्रपात किया, वहीं मुम्बई में 'सारिका' पत्रिका के सम्पादन के दौरान उन्होंने 'समान्तर कहानी' आन्दोलन भी चलाया, जिसमें मराठी के दलित आन्दोलन

को शामिल कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया। आज हिन्दी में दलित साहित्य आन्दोलन की जो रूप–रेखा है, उसके पीछे कमलेश्वर का बहुत बड़ा हाथ है। वस्तुतः कमलेश्वर ऐसे व्यक्तित्व थे जो अपने समय से आगे सोचते थे। सारिका के सम्पादन के दौरान उन्होंने पत्रिका को तीखे तेवर दिए और साहित्य व पत्रकारिता के बीच महीन लकीर खींची। 'नई कहानियाँ' और 'सारिका' के सम्पादक रूप में उन्होंने बड़ी संख्या में युवा कथाकारों को तरजीह दी और इनमें से कई तो हिन्दी भाषी क्षेत्रों के बाहर से थे। उनके समय में सारिका सामान्य जन के संघर्ष का शंखनाद बन चुकी थी और उनके सम्पादकीय आम आदमी को ही समर्पित होती थी। 'सारिका' में कमलेश्वर ने लेखकों के संघर्ष को चित्रित करता स्तम्भ 'गर्दिश के दिन' आरम्भ किया, जो काफी लोकप्रिय हुआ। कमलेश्वर की सम्पादकीय सदाशयता इतनी मशहूर थी कि कई जरूरतमंद कथाकारों को उन्होंने पारिश्रमिक पहले दिया और कहानी बाद में छापी। एक साहित्यकार किस हद तक एक्टिविस्ट हो सकता है, इसका आकलन सारिका के सम्पादक के रूप में कमलेश्वर जी के कार्यों को देखकर पता चलता है।

मुम्बई में 'सारिका' के सम्पादन के दौरान ही कमलेश्वर फिल्मी जगत के करीब आए और फिल्मों के आलेख भी लिखने आरम्भ कर दिये। हिन्दी फिल्म जगत में लेखक का दर्जा एक मुंशी से उठाकर सम्मानित लेखक बनाने का काम जिन लोगों ने किया उसमें कमलेश्वर प्रमुख थे। उन्होंने सैकड़ों फिल्मों व धारावाहिकों की पटकथाएं भी लिखीं। उनकी पटकथा पर आधारित फिल्म 'आंधी' और 'द बर्निंग ट्रेन' काफी चर्चित रही। भारत में दूरदर्शन को रंगीन बनाने में भी कमलेश्वर का बहुत बड़ा हाथ रहा। उन्होंने ही सर्वप्रथम दिल्ली में हुए एशियाड के रंगीन प्रसारण के लिए तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी को राजी किया था। यही नहीं कमलेश्वर को भारतीय दूरदर्शन के प्रथम पटकथा लेखक के रूप में भी जाना जाता है। दूरदर्शन के कार्यक्रम 'परिक्रमा और 'बंद फाइलें' काफी लोकप्रिय हुए। भारतीय कथाओं पर आधारित प्रथम साहित्यिक धारावाहिक 'दर्पण' भी कमलेश्वर जी ने ही लिखा और दूरदर्शन पर साहित्यिक कार्यक्रम 'पत्रिका' की शुरूआत भी उन्होंने ही की।

कमलेश्वर पुराने मूल्यों की जगह नए मूल्यों को स्थापित करने वाले रचनाकार रहे हैं। मध्यम वर्ग के मानस को उन्होंने अपनी रचनाओं में उकेरा भी। आपातकाल के दौर में सरकारी पक्ष के बहिष्कार की उन्होंने एक नई तकनीक इजाद की और 'सारिका' के पन्नों के उन अंशों को सरकारी नौकरशाहों के सामने रखने की बजाय काली स्याही से ढककर अपना विरोध दर्शया था। उनके बेबाकी के और भी उदाहरण हैं। मसलन, दूरदर्शन का क्षेत्रीय निदेशक बनाने की चर्चाओं के बीच जब वे तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी से मिलवाये गये तो उन्होंने बेबाकी से उन्हें बताया कि उन्होंने आपातकाल के खिलाफ अखबारों में तमाम सम्पादकीय और 'आँधी' फिल्म की कहानी

लिखी है। अन्ततः इंदिरा जी भी उनकी इस बेबाकीपन और स्पष्टेवादिता की कायल हुयीं और 1980–82 के मध्य कमलेश्वर दूरदर्शन के अतिरिक्त महानिदेशक पद पर आसीन हुए। इस पर रहते हुए उन्होंने दूरदर्शन का चेहरा काफी बदला और उसकी कलाहीनता पर नकेल भी कसी। कमलेश्वर के व्यक्तित्व और उनकी रचनाधर्मिता को किसी खास फ्रेम में जड़कर देखना मुनासिब नहीं होगा। वह एक साथ ही बहुत कुछ थे, पर अपनी हर भूमिका में वे सृजनशीलता व नएपन को प्रोत्साहित करते रहे। अपने उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' में उन्होंने हर प्रकार की साम्प्रदायिकता व अंधता पर जमकर चोट की। यह उपन्यास एक रचनाकार की कभी न खत्म होने वाली सामाजिक व मानसिक बेचैनियों को सामने लाती है और उपन्यास के उस पारम्परिक खाके में गम्भीर तोड़फोड़ करता है जिसके लिए इधर का उपन्यास काफी बदनाम रहा है। 'कितने पाकिस्तान' हेतु कमलेश्वर को 2003 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित भी किया गया। इसके अलावा 1995 में उन्हें पद्मभूषण से भी सम्मानित किया गया था।

कमलेश्वर जी की रचनाधर्मिता तो बहुआयामी थी ही, उनका व्यक्तित्व भी उतना ही बहुआयामी था। 1979 में एक लेख में हिन्दुत्व पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने लिखा था कि –''मैं जन्मजात हिन्दू हूँ, पर मुझे हिन्दू बनाया जा रहा है। मुझसे कहा जा रहा है कि तुम तभी सेक्युलर माने जाओगे जब अपने मन को हिन्दू मानोगे। क्योंकि हिन्दू हिन्दुत्व की प्रकृति के कारण सेक्युलर है। ........ मैं बहुत परेशान हूँ। मैं अपने मन से राष्ट्रीय भावना का लोप होना सह नहीं पा रहा हूँ। मुश्किल यह है कि मैं अभी तक हिन्दू हूँ। अब क्या करूँ। क्या मैं दोबारा हिन्दू बनना मंजूर करूँ या वही इंसान बना रहूँ जो मुझे मेरे घर वालों ने बनाया था।'' ऐसे ही न जाने कितने मुद्दों पर कमलेश्वर की कलम बेबाकी से चली और किसी भी कट्टरता को उन्होंने बर्दाश्त नहीं किया। वे उन लोगों में से रहे जिन्होंने अपने विभिन्न गुणों के साथ कई भूमिकाओं को जिया। ख्यातिलब्ध साहित्यकार, कथाशिल्पी, सम्पादक, अनुवादक, उपन्यासकार, कुशल पटकथा लेखक, दूरदर्शी पत्रकार, आन्दोलनकर्मी व सशक्त प्रशासक के रूप में उन्होंने हर भूमिका को जिंदादिली के अंदाज में जिया। 27 जनवरी 2007 को उनके देहावसान से उनकी भौतिक काया भले ही विलुप्त हो गयी हो पर उनकी कभी न खत्म होने वाली और निरन्तर सक्रिय बनी रहने वाली क्रांतिधर्मी रचनात्मक बेचैनी अभी भी जिन्दा है जो आगामी पीढ़ियों को उनके वजूद का अहसास कराती रहेगी।

**मो0– 09413666599**

○○○

# स्वामी विवेकानंद का अध्यात्म और अद्वैतवाद

❑ डा0 श्रीमती बसन्ती हर्ष

**यदा यदा हि धर्मस्य गलानिर्भवति भारत**
**अभ्युत्थानमधर्मस्य दतात्मानं सृजाम्यहम्**

अर्थात् (श्री मद्भागवतगीता में श्री कृष्ण भगवान अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं कि) –

जब जब भी धर्म की हानि अथवा पतन होने लगता है तब तब ही हे भारत (अर्जुन) धर्म के उत्थान के लिए मैं प्रत्येक युग में (बारम्बार) जन्म लेता हूँ।

स्वामी विवेकानन्द को भी यदि इसी प्रकार का अति मानव दिव्य पुरूष कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिए। सत्य द्रष्टा, वीर योद्धा तथा सन्यासी स्वामी विवेकानन्दजी के अद्भुत प्रयासों व क्रिया कलापों से न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण मानव जाति के लिए मानो नये युग का सूत्रपात् हुआ।

स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी 1863 को कोलकाता के सिमुलिया मौहल्ले में प्रसिद्ध बैरिस्टर विश्व मोहन दत्त के घर हुआ। इनकी माता का नाम भुवनेश्वरी था। स्वामी विवेकानन्द का बचपन का नाम नरेन्द्र था। नरेन्द्र बाल्यकाल से ही विलक्षण प्रवृति का था। किशोरावस्था में नरेन्द्र मेघावी, बलिष्ठ तथा निडर होने के साथ – साथ अपने साथियों के बीच नेता के रूप में सदैव सक्रिय रहे।

महाविधालय में अध्ययन कर रहे नरेन्द्र नाथ की भेंट अपने भावी गुरू श्री रामकृष्ण परमहंस देव से हुई। यहीं से नरेन्द्र नाथ के सोच – विचार व गतिविधियों का तरीका बदला तथा उनकी आध्यात्मिक यात्रा प्रारम्भ हुई जो अनवरत आगे बढ़ती गई। नरेन्द्र नाथ रामकृष्ण परमहंस का सान्निध्य पाकर नरेन्द्र से नरैन बने तत्पश्चात् खेतडी के नरेश राजा अजीतसिंह ने उन्हें 'स्वामी विवेकानन्द' नाम दिया। बाद में इसी नाम से सुशोभित होते हुए उन्होंने समस्त जगत को विवेक और वैराग्य द्वारा स्थायी आनन्द प्राप्ति का सन्देश दिया।

स्वामीजी के अनुसार प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति या स्थायित्व का अलग – अलग तरीका व कार्यप्रणाली होती है, उसी के आधार पर अमुक राष्ट्र की प्रगति सम्भव है। धर्म के पुनरूत्थान हेतु आध्यात्मिक विकास ही हमारे देश की उन्नति हेतु आधारशिला है। अतः देश का अस्तित्व बचाये रखने तथा उसे उन्नति प्रदान करने के लिए धर्म रूपी मेरूदण्ड को सुदृढ़ रखना आवश्यक है। हमारे अन्तःकरण में विराजमान दिव्य गुणों को पहचान कर उनका विकास करना ही धर्म या कहें कि

अध्यात्म की उन्नति हैं।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्

नेमा विद्यतो भाति कुतोडयमग्निः (कठोपनिषद् 2/2/15)

जहां सूर्य प्रकाश नहीं करता, चन्द्र और सितारे भी वहां नहीं, ये बिजलियां भी वहां नहीं चमकती, फिर इस भौतिक अग्नि का तो कहना ही क्या है ?

कटोपनिषद् की इन दिव्य हृदयस्पर्शी पंक्तियों को पढकर ऐसा प्रतीत होता है कि हम एक ऐसे जगत में पहुँच गये हैं जो हमारे पास होते हुए भी मानो कालातीत हो। इसी महान भाव के साथ – साथ उसका अनुगामी एक और महान भाव है जिसे मानव जाति और भी आसान से प्राप्त कर सकती है एवं जो मनुष्य के दैनिक जीवन में अनुसरणीय होने के साथ – साथ मानव जीवन के प्रत्येक विभाग में प्रविष्ट कराया जा सकता है। वह क्रमशः पुष्ट होता आया है और परवर्ती युगों में पुराणों में और भी स्पष्ट भाषा में व्यक्त किया गया है, वह है भक्ति का आदर्श। भक्ति का बीज पहले से ही विद्यमान है। संहिताओं में भी इसका थोड़ा बहुत परिचय मिलता है, उससे अधिक विकास उपनिषदों में देखने में आता है।

उपरोक्त कथनोपकथन स्वामी विवेकानन्द द्वारा लाहौर में 9 नवम्बर 1987 में दिए गए भाषण का अंश है।

उन्होंने जीवन को उन्नत बनाने हेतु आध्यात्मवाद को महत्वपूर्ण माना। आध्यात्मवाद अथवा ईश्वर के प्रति आस्था या भक्ति हेतु हमें पुराणों को समझना नितान्त आवश्यक है, ऐसा उनका मत था। सभी पुराणों का आरम्भ से अन्त तक भलीभांति निरीक्षण करने पर हमें एक तत्व निश्चित और स्पष्ट रूप में दिखाई देता है और वह है अध्यात्मवाद। साधु, महात्मा और राजर्शियों के चरित्र का वर्णन करते हुए अध्यात्मवाद बारम्बार उल्लिखित, उदाहृत और आलोचित हुआ है। भक्ति के आदर्श के दृष्टान्तों को समझाना ही सब पुराणों का प्रधान उद्देश्य जान पडता है। यह आदर्श साधारण मनुष्यों के लिए अधिक उपयोगी है। ऐसे लोग विरले ही होंगे जिन्हें वेद–पुराणों का भरपूर ज्ञान हो। उसके तत्वों पर अमल करना तो और भी दूर की बात है। वस्तुतः एक वेदान्ती को सभी प्रकार के सांसारिक राग – द्वेष, लोभ – मोह आदि को छोड़कर निर्भीक (अभीः) होना होगा। जो लोग सर्वत्र अनेकानेक विषयों में उलझे हुए हैं, नाना विषय भोगों के दासत्व के बन्धन में जकडे हुए हैं, वे मानसिक रूप से कितने दुर्बल होते जा रहे हैं, उसे शब्दों में वर्णन करना कठिन है। ऐसे ही लोगों को हमारे पुराण या वेदान्त अध्यात्म का अत्यन्त मनोहारी सन्देश देते हैं। (विवेकानन्द साहित्य – पृष्ठ संख्या 278)

स्वामी विवेकानन्द ने वेदान्त का महत्व समझाते हए कहा कि इनमें उन लोगों के लिए सुकोमल और कवित्वमय भावों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। ध्रुव

प्रहलाद तथा अन्यान्य सैकड़ों, हजारों सन्तों की अद्भुत और अनोखी जीवन कथाएं वर्णित की गई हैं। इन दृष्टान्तों का उद्देश्य यही है कि लोग उसी भक्ति का अपने – अपने जीवन में विकास करें और इन दृष्टान्तों द्वारा रास्ता साफ दिखाई दे। वस्तुतः वेदान्त की उपयोगिता प्रत्येक युग में रही है और भविष्य में भी चिरन्तन काल तक बनी रहेगी। केवल आवश्यकता है उसके भली भान्ति चिन्तन मनन की।

स्वामी विवेकानन्द के मतानुसार अन्य अनेक धर्मग्रन्थों में भी जन साधारण के लिए धर्म का मार्ग बताया गया, परन्तु वेदान्त या अद्वैत में बताये गये धर्मोपदेश अन्य धर्मो की अपेक्षा प्रशस्ततर, उन्नततर और सर्वसाधारण के लिए उपयुक्त हैं। (विवेकानन्द साहित्य – पृष्ठ संख्या 279)। हमें अपने दैनिक जीवन में इसी भाव का अनुसरण करना होगा। जिससे भक्ति का वही भाव क्रमशः परिस्फुट होकर अन्त में प्रेम का सारभूत बन जाता है। हां, इसके लिए व्यक्तिगत स्वार्थ तथा जड़ वस्तुओं के प्रति अनुरक्ति से दूर होना होगा।

स्वामी जी ने अपने वक्तव्य में वेदों के बारे में बताया कि वेद अनादि व अनन्त है, वे ईश्वरीय ज्ञान राशि हैं, स्वतः प्रमाण हैं। वेद कभी लिखे नहीं गये, न कभी सृष्ट हुए। वे अनादिकाल से वर्तमान हैं। जैसे सृष्टि अनादि व अनन्त है वैसे ही ईश्वर का ज्ञान भी। यह ईश्वरीय ज्ञान ही वेद है। 'विद्' धातु का अर्थ है जानना। वेदान्त नामक ज्ञान राशि ऋषि नामधारी पुरूषों के द्वारा आविष्कृत हुई है। वस्तुतः मन्त्रद्रष्टा वर्तमान भावराशि के द्रष्टा थे। ऋषिगण आध्यात्मिक आविष्कारक थे।

यह वेद नामक ग्रन्थ राशि प्रधानतः दो भागों में विभक्त है – कर्मकाण्ड और ज्ञान काण्ड, संस्कार पक्ष और अध्यात्म पक्ष। कर्मकाण्ड के अन्तर्गत साधारण व्यक्ति के कर्त्तव्य निहित हैं। जबकि दूसरा भाग ज्ञानकाण्ड हमारे धर्म का आध्यात्मिक अंश है जिसका नाम वेदान्त है अर्थात् वेदों का अन्तिम भाग, वेदों का चरम लक्ष्य। वेद ज्ञान के इस सार अंश का नाम है वेदान्त अथवा उपनिषद्। वस्तुतः उपनिषदों के ही बड़े – बड़े आध्यात्मिक और दार्शनिक तत्व आज हमारे घरों में पूजा के प्रतीक रूप में परिवर्तित होकर विराजमान हैं। इस प्रकार आज हम जितने पूजा के प्रतीकों का व्यवहार करते आये हैं, वे सबके सब वेदान्त से आये हैं क्योंकि वेदान्त में उनका रूपक भाव से प्रयोग किया गया है फिर क्रमशः वे भाव जाति के मर्म स्थान में प्रवेशकर अन्त में पूजा के प्रतीकों के रूप में उसके दैनिक जीवन के अंग बन गये हैं। (विवेकानन्द साहित्य – पृष्ठ संख्या 20)

स्वामी विवेकानन्द ने आध्यात्मिकता तथा ब्रह्मतत्व को जानने के लिए अपनी आत्मा के अनुसन्धान को महत्व दिया। वस्तुतः बाह्य जगत की घटनाएँ उस सर्वातीत अनन्त सता के विषय में हमें कुछ नहीं बताती, केवल अन्तर्जगत् के अन्वेषण से ही उसका पता लग सकता है। इसे परम सत्ता या कहें कि परमात्मा के

भी हमारे शास्त्रों में दो रूप कहे गये हैं – सगुण और निर्गुण। सगुण ईश्वर के अर्थ से वह सर्वव्यापी है, संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कर्ता है। संसार का अनादि जनक तथा जननी है। जबकि निर्गुण ब्रह्म के लिये ये सभी विशेषण अतार्किक व अनावश्यक माने गये हैं। वेदों में उसके लिए 'सः' शब्द का प्रयोग न करके उसके निर्गुण भाव को समझाने के लिए 'तत्' शब्द द्वारा उसका निर्देश किया गया है।'सः' शब्द कहने से वह व्यक्ति विशेष हो जाता तथा जीव जगत के साथ उसका पार्थक्य सूचित हो जाता है। इसलिए निर्गुण वाचक तत् शब्द का प्रयोग किया गया है और तत् शब्द से निर्गुण ब्रह्म का प्रचार हुआ है। इसी को अद्वैतवाद कहते हैं।

जब हम इस अनन्त और निर्गुण पुरूष से अपने को पृथक् सोचते हैं तब ही हमारे दुःख की उत्पत्ति होती है और इस निर्ववनीय निर्गुण सता के साथ अभेद ज्ञान ही मुक्ति है। निर्गुण ब्रह्मवाद की भावना से ही समस्त प्राणिजनों को आत्मवत् प्यार करने का सिद्धान्त प्रतिपादित होता है। इसका कारण यह है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की एकात्मकता व विश्व की एकता को अनुभव करने पर ही मनुष्य और इतर प्राणियों में कोई भेद नहीं रहता है। तब हमें यह बात समझ में आयेगी कि दूसरों को प्यार करना स्वयं को प्यार करना है व दूसरों को हानि पहुंचाना स्वयं का ही अहित है। उस निर्गुण ब्रह्म पर विश्वास कर सब प्रकार के कुसंस्कारों से मुक्त हो 'मैं ही वह निर्गुण ब्रह्म हूँ' इस ज्ञान के बल पर अपने पैरों पर खडे होने से एक अद्भुत शक्ति का संचार हो जाता है। मनुष्य तब निर्भय होकर अपनी आत्मा में प्रतिष्ठित हो जाता है जो असीम अनन्त अविनाशी है, जिसे कोई शस्त्र छेद नहीं सकता, आग जला नहीं सकती, पानी गीला नहीं कर सकता, वायु सुखा नहीं सकती।

नैंन छिब्दन्ति शस्त्राणि, नैंन दहति पावकः

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारूतः (गीता 2/23)

स्वामीजी के अनुसार हमें इसी आत्मा पर विश्वास करना होगा, इसकी इच्छा से शक्ति प्राप्त होगी। हम जो सोचेंगे वही हो जायेंगे। यदि स्वयं को दुर्बल मानोगे तो दुर्बल और शक्तिशाली सोचोगे तो शक्तिशाली बन जाओगे। स्वयं अपवित्र सोचोगे तो अपवित्र तथा पवित्र सोचोगे तो पवित्र हो जाएंगे। इससे हमें यही शिक्षा मिलती है कि हम अपने को कमजोर न मानकर वीर्यवान, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ मानें। हमारे अन्दर सम्पूर्ण ज्ञान, सारी शक्तियां, पूर्ण पवित्रता और स्वाधीनता के भाव विधमान है। फिर हम उन्हें जीवन में प्रकाशित क्यों नहीं कर सकते। यदि हम उन पर विश्वास करें तो उनका विकास अवश्यम्भावी है। निर्गुण ब्रह्म से हमें यही शिक्षा मिलती है। इसी प्रकार हमें अपने बच्चों को बाल्यकाल से ही निर्भीक व बलवान बनाना चाहिये। जिससे वे तेजस्वी हों तथा अपने ही पैरों पर खडे हो सकें।

साहसी, सहिष्णु व सर्वविजयी बन सकें। इसके लिए उन्हें सर्वप्रथम आत्मा की महिमा के बारे में ज्ञान प्रदान करना होगा। यह शिक्षा केवल वेदान्त द्वारा ही प्राप्त होगी। क्योंकि वेदान्त में ही वह महान् तत्व है जिससे सारे संसार के भावजगत् में क्रान्ति होगी और भौतिक जगत् के ज्ञान के साथ धर्म का सामंजस्य स्थापित होगा।

इस प्रकार से स्वामी विवेकानन्द ने द्वैत, विशिष्टा द्वैत, तथा अद्वैत मतों का वर्णन करके उनके सिद्धान्तों का समन्वय किया। उनके अनुसार उपर्युक्त सभी मतों में प्रत्येक मानो एक एक सोपान है – एक सोपान पर चढने के बाद परवर्ती सोपान पर चढना होता है। सबके अन्त में अद्वैतवाद की स्वाभाविक परिणति है और अन्तिम सोपान है – तत्वमसि' स्वामी जी ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि वर्तमान भारत में धर्म का मूल तत्व नहीं रह गया है। सिर्फ थोडे बाह्य अनुष्ठान मात्र रह गये हैं। भारतवासी इस समय ना तो हिन्दू हैं और ना ही वेदान्ती हैं। वे केवल छूआछूत मत के पोषक हैं इस स्थिति का अन्त होना ही चाहिये और जितना शीघ्र इसका अन्त हो, उतना ही धर्म के लिए अच्छा है। स्वामीजी के अनुसार बहुत्व में एकत्व की खोज को ही ज्ञान कहते हैं और किसी विज्ञान का चरम उत्कर्ष तब माना जाता है जब सारे अनेकत्व में एकत्व का अनुसन्धान पूरा हो जाता है। यह नियम भौतिक विज्ञान तथा आध्यात्मिक विज्ञान दोनों पर समान रूप से लागू होता है।

कहने का सार यही है कि यदि ईश्वर को पाना चाहते हो तो काम कांचन का त्याग करना होगा। यह संसार असार, मायामय और मिथ्या है। लाख यत्न करो, पर इसे छोडे बिना कदापि ईश्वर को नहीं पा सकते। जो ब्रह्म को भली भान्ति जान चुका है, अर्थात् जिसने ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया है, जिसके लिए ईश्वर करतलामकवत् है – श्रुति का कहना है कि वही गुरू होने योग्य है। जब यह आध्यातिमक संयोग स्थापित होता है, तब ईश्वर का साक्षात्कार होता है – तब ईश्वर दृष्टि सुलभ होती है। गीता में भी यही भाव व्यक्त किया गया है कि –

इहैव तैर्जितः सर्गो येशां साम्ये स्थित मनः

निर्दोश हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्माणि ते स्थिताः

(श्रीमद् भगवद्गीता –5 / 19)

अर्थात् जिनका मन इस साम्य भाव में अवस्थित है, जिन्होंने इस जीवन में ही संसार पर विजय प्राप्त कर ली है। चूंकि ब्रह्म निर्दोष और सबके लिए सम है, इसलिए वे ब्रह्म में अवस्थित हैं।

**मो0 9460616118**

○○○

# हिंदी के विस्तार में है अन्य भाषाओं का हित

❑ **कृपाशंकर चौबे**

हिंदी की महत्ता तभी स्थापित हो गई थी जब वह स्वाधीनता संग्राम के समय समूचे देश को आपस में जोड़ने वाली सबसे सशक्त संपर्क भाषा बन गई थी। उसी दौर के सभी नेताओं का मानना था कि अगर कोई भारतीय भाषा देशवासियों को एक जुट करने में सहायक बन सकती है तो वह हिंदी ही है। हिंदी की सामर्थ्य को गांधी ने भी समझा और नेता सुभाषचंद्र बोस ने भी। आचार्य बिनोवा भावे ने कहा था कि यदि मैंने हिंदी का सहारा न लिया होता तो कश्मीर से कन्याकुमारी और असम से केरल तक के गांव–गांव में जाकर मैं भूदान, ग्राम दान का संदेश जनता तक न पहुंचा पाता। हिंदी ने राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त किया। उसे यह भी बोध रहा कि भारत का विकास और राष्ट्रीय एकता की रक्षा प्रादेशिक भाषाओं के पूर्ण विकास से ही संभव है। हिंदी में वह शक्ति है कि वह अपने माध्यम से भारत को जोड़ सके। हिंदी को अपना स्थान अभी भी हासिल करना है। उसे इस मिथ्या धारणा को तोड़ना है कि विकास की भाषा तो अंग्रेजी ही है। अगर अंग्रेजी सचमुच विकास की भाषा होती तो पहले जापान और फिर जर्मनी और चीन ने अपनी भाषा में चमत्कारिक प्रगति न हासिल की होती।

हाल के समय में हिंदी ने उल्लेखनीय प्रगति और पहुँच स्थापित की है, लेकिन केवल इतने से संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता कि वह देश की सबसे ज्यादा बोले जाने वाली भाषा बन गई है। हिंदी ज्ञान अर्जन की, विज्ञान एवं तकनीक की और सरकारी एवं गैर सरकारी कामकाज यानी रोजगार की सक्षम भाषा भी बननी चाहिए। जब ऐसा होगा तभी उसे अपना मुकाम हासिल होगा। इस मुकाम को हासिल करने में हिंदी को गैर हिंदी भाषियों का सहयोग और समर्थन चाहिए होगा। यह तभी हासिल हो सकता है जब हिंदी के प्रति अन्य भाषा–भाषियों की आशंकाओं को दूर करने में सफलता मिलेगी । गैर हिंदी भाषियों में हिंदी को लेकर किसी तरह की आशंका उपजने न पाए, इसके लिए हिंदी प्रेमियों को सतर्क रहना होगा और इस क्रम में उन हिंदीतर भाषियों का स्मरण करना होगा जिन्होंने विभिन्न कालखंडों में हिंदी के विस्तार में योगदान किया । इसे गैर हिंदी भाषी क्षेत्रों के उन लोगों को भी स्मरण रखना चाहिए जो रह–रहकर किसी न किसी बहाने हिंदी का विरोध करने के लिए आगे आ जाते हैं। ऐसा करके वे हिंदी के साथ ही अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का भी अहित करते हैं, क्योंकि देश में जब भी हिंदी के विरोध में कहीं से

कोई अवाज उठती है तो जाने –अनजाने उसका लाभ अंग्रेजी के हिस्से में जाता है। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि सिविल सेवा परीक्षा में अंग्रेजी के वर्चस्व से तभी लड़ा जा सका जब हिंदी भाषी छात्रों के साथ अन्य भारतीय भाषाओं के छात्र एक जुट हुए। इस एक जुटता को और बढ़ाने की जरूरत है, क्योंकि अंग्रेजी से उपजी अंग्रेजियत की संस्कृति यानी खुद को विशिष्ट समझने की मानसिकता हिंदी के साथ अन्य भारतीय भाषाओं के लिए एक खतरा बनी हुई है।

बहुत कम लोग इससे परिचित होंगे कि आधुनिक हिंदी गद्य का जन्म हिंदीतर क्षेत्र कलकत्ता के पोर्ट विलियम कॉलेज में तब हुआ जब वहां हिंदुस्तानी भाषा विभाग के प्रमुख बांगलाभाषी तारिणी चरण मित्र थे। हिंदी का पहला साप्ताहिक समाचार पत्र ''उदंत मार्तंड' हिंदीतरभाषी क्षेत्र कलकत्ता से ही 30 मई 1826 को निकला। हिंदी का पहला दैनिक समाचार पत्र 'सुधावर्षण' भी कलकत्ता से ही 1854 में निकला । इसे बांग्लाभाषी श्यामसुंदर सेन ने निकाला था। बांग्लाभाषी जस्टिस शारदाचरण मित्रने देवनगरी लिपि के विस्तार के उद्देश्य से 'देवनागर' नामक पत्रिका 1907 में निकाली। हिंदी में पहला एम.ए. होने का गौरव नलिनी मोहन सन्याल नामक एक बांग्लाभाषी ने पाया। ऐसा इसलिए हो सका, क्योंकि देश में पहली बार 1919 में हिंदी में एम.ए. की पढ़ाई कलकत्ता विश्वविद्यालय में तत्कालीन कुलपति सर आशुतोष मुखर्जी ने शुरु कराई। नेता जी सुभाष चन्द्र बोस के हिंदी प्रेम को देखते हुए ही 20 दिसंबर 1928 को कलकत्ता में आयोजित राष्ट्रभाषा सम्मेलन की स्वागत समिति का अध्यक्ष उन्हें बनाया गया। वहां उन्होंने हिंदी के पक्ष में ऐतिहासिक भाषण हिंदी में ही दिया। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शांतिनिकेतन में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को 1930 में हिंदी शिक्षक नियुक्त किया और 1940 में हिंदी भवन की स्थापना की। इसी तरह पूर्वी भारत, मध्य भारत, उत्तर भारत, दक्षिण भारत, और पूर्वोत्तर भारत के हिंदीतर भाषियों ने विभिन्न कालखंडो में हिंदी को सींचने का महत्वपूर्ण काम किया।

हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि देवनगरी लिपि के लिए एक हिंदीतर भाषी लेखक ने अपनी शहादत तक दी। वे थे बिनेश्वर ब्रम्हा वह असम में 'देवनागरी के नवदेवता' के तौर पर जाने जाते हैं। हिंदी को राष्ट्रीय स्वरुप देने में सबसे अधिक योगदान महात्मा गांधी का है। 1934 में पूर्वोत्तर भारत में हिंदी प्रचार महात्मा गांधी की प्रेरणा से ही प्रारंभ हुआ। 1936 में उन्होंने वर्धा में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना की और दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार के लिए अपने सबसे छोटे पुत्र देवदास गांधी को मद्रास भेजा था। देवदास गांधी के साथ स्वामी सत्यदेव परिव्राजक 1918

में मद्रास गए और दक्षिण भारत में हिंदी का प्रचार–कार्य शुरु किया। वे दोनों दक्षिण भारत के सर्वप्रथम हिंदी प्रचारक माने जाते हैं। इसके पहले 1927 में दक्षिण भारत के हिंदी प्रचार कार्य को हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के नियंत्रण से अलग करके दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा नामक संस्था बनाई गई। यह संस्था आज भी आंध्र प्रदेश, तामिलनाडु, कर्नाटक और केरल में हिंदी का प्रचार–प्रसार कर रही है।

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के कार्यो के कारण दक्षिण भारत के हर राज्य में स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी में पठन–पाठन प्रारंभ हुआ। अक्टूबर 1941 में मलयालम की प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्रिका 'मातृभूमि' में एक हिंदी खंड दिया जाने लगा। उसे केरल की पत्रकारिता की ऐतिहासक घटना माना जाता है। लगभग एक वर्ष तक 'मातृभूमि' में हिंदी स्तंभ के तहत हिंदी कविता,कहानी, लेख, यात्रा वृतांत छपते रहे। वास्तव में भारतीय भाषाओं  के बीच पारस्परिक साझेदारी और आपसी संवेदना की ऐसी समझ का विकास होने पर ही अखिल भारतीय बोध का विस्तार होगा और तभी हिंदी दिवस सही अर्थों में अखिल भारतीय स्तर पर मनाया आएगा। आज अगर हिंदी राजभाषा के दर्जे तक सीमित है तो शायद इसीलिए कि सभी भारतीय भाषाओं के लोग इस पर सहमत नहीं हो पा रहे हैं कि वह राष्ट्रभाषा बने। यह समझने की जरूरत है कि हिंदी का विस्तार और विकास ही अन्य भारतीय भाषाओं के हित में है।

ooo

(हम सभी लगभग मित्रहीन हो चुके हैं, पर हमें इसका अहसास तक नहीं है)

# कोई दोस्त क्यों नहीं मिलता

❑ विजय गोयल

एक बार मेरी और मेरे साथी की बात चल रही थी। बात इस मुद्दे पर अटक गई कि कौन सच्चा दोस्त मद्दगार होता है, कौन नहीं। मैंने उससे पूछा कि तुम्हारा कौन दोस्त है? उसने तपाक से जवाब दिया–बहुत से। मैंने इससे चार दोस्तों के नाम बताने को कहा। दस मिनट सोचने के बाद उसने बमुश्किल एक नाम लिया। मुझे लगा कि वह नाम भी उसने इस शर्मिंदगी से बचने के लिए ले लिया कि कहीं मैं यह न कह बैठूँ कि तेरा तो एक भी सच्चा दोस्त नहीं है। चर्चा आगे बढ़ी तो साथी ने सवाल दागा कि फिर सच्चा दोस्त कौन है? मैंने उसे बताया कि जब हम मुसीबत में हों तो सबसे पहले जिस आदमी का नाम हमें याद आए, वही हमारा असल दोस्त है। मजे की बात यह है कि कई बार यह वो व्यक्ति होता है, जिसे हम अपना दुश्मन समझ रहे होते हैं। पर इस सच्चे दोस्त के साथ हम न ज्यादा हंसते बोलते हैं, न साथ घूमते हैं। उसके साथ हम कम से कम समय बिताते हैं। यह बात सुनकर मेरा साथी मेरा मुंह ताकने लगा, मानो मैंने उसके मन की बात जान ली हो। लगता है, दुनिया अकेली हो गई है। लोग भीड़ में अकेले घूम रहे हैं, और सबको सच्चे दोस्त की तलाश है। निदा फाजली ने ठीक लिखा है–''हर तरह, हर जगह बेशुमार आदमी/फिर भी तनहाइयों का शिकार आदमी।'' मैं संसद तक देखता हूँ कि संसद भवन में सांसद बैग पकड़े सिर झुकाये आते हैं और चुपचाप निकल जाते, वहां उनको कोई ऐसा नहीं लगता जिसके साथ हंस बोल लें, कुछ क्षण बैठकर गप्पें लगा लें।

आजकल की दोस्ती में हमें किसी पर विश्वास ही नहीं रहा। दोस्ती तो तब है, जब अतरंग से अतरंग बातें भी एक–दूसरे से बेहिचक साक्षा की जा सकें। पर आजकल हर दूसरे आदमी से हमें डर लगता है कि कहीं वह हमारे नाम का गलत फायदा न उठा ले, हमारी चुगली न कर दे या हमें नुकसान न पहुंचा दे। क्या विडंबना है कि जिसे हम दोस्त कह रहे हैं, उसी से डर रहे हैं। जिसके साथ हम समय बिता रहे हैं उससे भी खुल नहीं पा रहे। कुछ लोग कहते हैं, आजकल दुश्मन ज्यादा भरोसेमंद हैं क्योंकि हमें पता है कि वे कहां तक नुकसान पहुंचा सकते हैं। बहुत से लोगों की पीड़ा यह है कि उनके पास कोई ऐसा दोस्त नहीं है जिससे वे खुलकर मन की बात कर सकें। बातें करने के लिए कोई रह गया है तो ले–देकर पत्नी है, लेकिन वहां भी कुछ न कुछ खटपट लगी रहती है। भाई–बहन भी नहीं क्योंकि अब हम उनके साथ भी बड़े घर और बड़ी कार की होड़ लगा रहे हैं। जानते हैं, हमारे दोस्त क्यों नही बन रहे? असल में हम अपने बच्चों को शुरु से वन–अपमैनशिप सिखाते हैं कि तुम दूसरों से एक कदम आगे रहना । जब बच्चा

अपने दोतों के साथ किसी रेस्तरां में जाता है तो उसके लौटते ही सबसे पहले हम पूछते हैं कि पैसे किसने खर्च किए? हम उसे दोस्तों पर खर्च करना नहीं, दूसरों के पैसे खर्चवाना सिखाते हैं। फिर क्यों कोई आपके बच्चे को पसन्द करेगा? जब आपका बच्चा आपके सामने लगातार अपने दोस्त की तारीफ करता है तो यह तारीफ भी आपको चुभती है। जब आपका बच्चा अपने किसी दोस्त के किसी काम के लिए मरा जाता है तो भी आप मुंह बनाते हैं और उल्टा सवाल करते हैं कि वह तुम्हारे लिए क्या करता है? क्या हम बच्चों को दोस्तों में भी फायदा ढूंढने के संस्कार नहीं दे रहे? दोस्ती निःस्वार्थ त्याग मांगती है, समय मांगती है। दोस्ती तब होती है, जब दूसरे को लगता है कि आप उसकी चिंता करते हैं। हमने कई बार देखा है कि दोस्त का जरुरी काम पड़ने पर हम कोई तकनीकी बहाना बनाकर बचते हैं और सोचते हैं कि इस बहाने को वह सच मानेगा और हमारी दोस्ती में कोई फर्क नहीं आएगा। लेकिन फिर जब हमें काम पड़ता है तो उधर से भी तकनीकी बहाना आ जाता है। कहते हैं कि हमारी भावना ही हम तक लौटकर आती है। कई बार हम दोस्ती और चाटुकारिता में फर्क नहीं कर पाते। असल दोस्त वह है जो आपके मुंह पर सही को सही और गलत को गलत बोलने की ताकत रखता हो। लेकिन हम सामने वाले को दोस्त भी कह रहे हैं और उससे ईर्ष्या भी कर रहे हैं कि कहीं वह हम से आगे न निकल जाए। कितने दोस्त ऐसे हैं जो दोस्त को खुद से आगे निकलता देख खुश होते हैं?

दोस्तों में हमारे संस्कारों की अहम भूमिका होती है। जिन लोगों ने अपने सगे रिश्तेदारों तक सारे हिसाब–किताब कर लिए,वे दोस्तों को क्या छोड़ेगें? मुझे आज तक ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिला जिसमें किसी ने अपनी प्रापर्टी अपने उस दोस्त के नाम की हो जिसने जिंदगी भर उसके बच्चों और भाइयों से बढ़कर भी उसका साथ दिया हो। बहुत से लोग कहते हैं कि दोस्ती तब होती है जब आपको किसी से काम नहीं होता। मेरा मानना इससे बिल्कुल उलटा है। मुझे लगता है कि दोस्ती तब होती है जब कोई आदमी सुख–दुःख का साथी बनता है। जब हम एक–दूसरे के काम आते हैं तो धीरे–धीरे निकटता बढ़ती है। कई बार मैं लोगों से कहता हूँ कि आप मेरा काम करिए उससे आपका विश्वास मुझमें बढ़ जाएगा। क्योंकि तब आपको लगेगा कि जब आपने मेरा भला किया है तो मैं आपका बुरा क्यों करुँगा। जिंदगी में किसी भी मोड़ पर सिर्फ एक अच्छा दोस्त मिल जाए तो वह हजार के बराबर है। वह सभी हीरों में कोहिनूर है।

अहमद फ़राज ने लिखा है–''जिंदगी से यही मिला है मुझे/ तू बहुत देर से मिला है मुझे/ हमसफर चाहिए हुजूम नहीं / इक मुसाफिर भी काफिला है मुझे।।''

**(लेखक संसदीय कार्य राज्य मंत्री हैं)**

○○○

(अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस 8 मार्च पर विशेष)

# आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में नारी शक्ति

❑ आकांक्षा यादव

नारी सशक्तिकरण के लिए जरुरी है कि उसकी आर्थिक स्वतंत्रता भी सुनिश्चित की जाए। आर्थिक सशक्तिकरण न सिर्फ नारी स्वातंत्र्य को समृद्ध करता है बल्कि घर से लेकर कार्य क्षेत्र तक निर्णय प्रक्रिया में भी महिलाओं की प्रभावी भूमिका सुनिश्चित करता है। देश की आधी आबादी होने के बावजूद अभी भी महिलाएं रोजगार के क्षेत्र में कम ही हैं। आजादी के इतने साल बाद भी महिलाएं अपने फैसले खुद नहीं ले पातीं। परिवारों में भी उन्हें बड़े फैसले लेने की आजादी नहीं है। खासकर, आर्थिक मामलों में उनकी बात को तवज्जो नहीं दी जाती। इसके लिए शिक्षा के मौजूदा स्वरूप को बदलना होगा। यह अनायास नहीं है कि स्कूली पाठ्यक्रम की पुस्तकों में महिलाओं को घर के काम करते और पुरुषों को बाहर के काम करते दिखाया जाता है। अतः स्कूली स्तर से ही इस लिंग विभेद को खत्म करना होगा और परिवार के सामाजिकीकरण को बदलना होगा। आखिर, महिलाएं भी शिक्षित होकर अपना कैरियर बना रही हैं और उच्च सेवाओं में जा रही हैं। शिक्षा के चलते नारी जागरूक हुई और इस जागरूकता ने नारी के कार्यक्षेत्र की सीमा को घर की चहारदीवारी से बाहर की दुनिया तक फैला दिया। शिक्षा के बढ़ते प्रभाव के चलते आज नारी भी अपने कैरियर के प्रति संजीदा है।इससे जहाँ नारी अपने पैरों पर खड़ी हो सकी, वहीं आर्थिक आत्मनिर्भरता ने उसे रचनात्मक कार्यों हेतु भी प्रेरित किया। पुरुषवादी दृष्टिकोण से कुछेक लोगों को ऐसा लगता है कि इससे परिवार का मैनेजमेंट बिगड़जाएगा, पर वे यह भूल जाते हैं कि हर महिला में एक अच्छा मैनेजर छिपा रहता है। तभी तो महिलाएं एक साथ घर के काम करने के साथ बच्चों का लालन–पोषण करते हुए अपने कैरियर में भी नई ऊँचाइयाँ चढ़ती हैं।

भूमंडलीकरण और उदारीकृत अर्थव्यवस्था के बीच संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी की नित नई तकनीकों के बीच जहाँ देशों की भौतिक सीमाओं का महत्व नहीं रहा, वहाँ महिलाओं की प्रतिभा को घर की चहरदीवारियों के बीच कैद करने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। वर्तमान परिवेश में विकास की वह हर परिभाषा अधूरी है जो महिला और पुरुष में मात्र उनके दैहिक विभेद के कारण असमानता का व्यवहार करती हो। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा मार्च 2015 में जारी एक रिपोर्ट पर गौर करें तो महिला–पुरुष का विभेद कड़वी सच्चाई की तरह उजागर हो जाता है।

इसके अनुसार तमाम उपायों के बावजूद अभी भी महिलाओं को पुरुषों के बराबर वेतन नहीं मिलता है। दोनों के वेतन में भारी अंतर है। महिलाओं को पुरुषों के बराबर वेतन पाने में अभी और 71 वर्षों का इंतजार करना होगा। पुरुष जितना कमाते हैं उसका 77 प्रतिशत ही महिलाएं अर्जित कर पाती हैं।

मैकेंजी एंड कंपनी के एक अध्ययन के मुताबिक, यूरोप में कॉरपोरेट निदेशक मंडल और कार्यकारी समितियों में क्रमशः 17 और 10 फीसदी महिलाओं की भागीदारी है। अमेरिका में यह आँकड़ा क्रमशः 15 फीसदी और 14 फीसदी है। भारत में कॉरपोरेट निदेशक मंडल में महिलाओं की मौजूदगी मात्र 5 फीसदी है। देश में 11 फीसदी महिलाएँ बड़ी–बड़ी कंपनियों में मुख्य कार्यकारी अधिकारी (सीईओ) जैसे उच्च पद पर काबिज हैं। देश के सबसे बड़े व्यापारिक घराने टाटा समूह के चेयरमैन साइरस मिस्त्री चाहते हैं कि महिला कर्मचारी उनकी विभिन्न कंपनियों के महत्वपूर्ण पदों को सँभालें। अभी कई जगहों पर महिलाओं का प्रतिशत कम है। टाटा समूह में संतुलन 50 फीसदी का बनाना होगा। साइरस का मानना है, ''हम एक ऐसी दुनिया में हैं, जहाँ मानव संसाधन सफलता और असफलता तय करते हैं। महिलाओं की टाटा समूह में कमी को हमें बड़े नुकसान के तौर पर देखना चाहिए।'' महिला कर्मचारियों के महत्व को रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा कि महिलाओं के होने से कंपनी के कार्यस्थल का माहौल ज्यादा बेहतर होता है। उनके प्रबंधन का तरीका पुरुषों से एकदम जुदा होता है। इससे कई नए विचार आते हैं। नए नजरिये से सोचने की वजह से हम बेहतर निर्णय ले पाते हैं। गौरतलब है कि टाटा समूह के पास इस समय टाटा स्टारबक्स लिमिटेड की सीईओ अवनी दावदा, टाटा कॉफी की चीफ मेडिकल ऑफिसर कावेरी नेंबिसन और लैंडरोवर की प्लांट ऑपरेशन डायरेक्टर मार्गरेट कैंपबेल जैसी कई काबिल महिलाएं हैं।

वस्तुतः महिला–पुरुष समानता सिर्फ एक सामाजिक आवश्यकता ही नहीं है बल्कि रोजगार में महिलाओं को समानता देकर भारत अपने सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में 27 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी भी कर सकता है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की प्रबंध निदेशक क्रिस्टिन लिगार्ड ने सितंबर, 2015 में महिला सशक्तिकरण पर आयोजित जी–20 देशों के प्रतिनिधियों के सम्मेलन में कहा कि हमारे अनुमान के मुताबिक यदि कामकाजी महिलाओं की संख्या कामकाजी पुरुषों के बराबर हो जाए तो अमेरिका का जीडीपी 5 प्रतिशत, जापान का 9 प्रतिशत और भारत का 27 प्रतिशत बढ़सकता है। उन्होंने कहा कि सुरक्षित और अच्छी आमदनी वाले रोजगारों में महिलाओं की संख्या बढ़ने से प्रति व्यक्ति आय में भी बढ़ोत्तरी होगी। इससे आय की असमानता कम करने और लिंग भेद खत्म करने में भी मदद

मिलेगी। खाद्य एवं कृषि संगठन के एक अध्ययन का हवाला देते हुए उन्होंने कहा कि नारी सशक्तिकरण गरीबी कम करने में भी सहायक होगी। इसके अनुसार कृषि कार्यों में महिलाओं को पुरुषों के बराबर पहुँचा देने से विकासशील देशों के कृषि उत्पादन में चार प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है और इससे लगभग 10 करोड़लोगों को भुखमरी से बाहर निकाला जा सकता है। महिलाओं की जिंदगी में तीन प्रमुख पड़ावों पर उन्हें प्रोत्साहित कर उनका सशक्तिकरण सम्भव है – शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराकर, रोजगार में पुरुषों के बराबर स्थान देकर और परिवार के स्तर पर समर्थन देकर।

आज के समय में महिलाएं सिर्फ एक गृहिणी न रहकर एक कामकाजी महिला की भूमिका भी निभा रही हैं। कुछ महिलाएं तो ऐसी हैं जो न केवल भारतीय, बल्कि विदेशी कंपनियों तक में सी.ई.ओ के पद पर पहुँच गई हैं। तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों और प्रतिरोधों के बावजूद आज कॉरपोरेट जगत में भी महिलाएँ प्रभावी भूमिका निभा रही हैं। बैंकिंग, हॉस्पिटेलिटी, फूड एंड बेवरेजेज, फार्मा और इंफोर्मेशन टेक्नोलॉजी सेक्टर जैसे तमाम क्षेत्रों में ये महिलाएं अपनी सेवाएं दे रही हैं। ये महिलाएं बहुत सारे लोगों के लिए रोल मॉडल बनकर भी उभरी हैं।

कॉरपोरेट जगत से लेकर बैंकिंग जगत तक तमाम महिलाएं अपनी प्रभावी उपस्थिति से नित नए आयाम रच रही हैं। एक दौर था कि इन क्षेत्रों में शीर्ष पदों पर महिलाएं बमुश्किल ही दिखती थीं, पर वक्त के साथ अब तमाम बदलाव आये हैं। गौरतलब है कि भारत के सात नेशनल बैंकों की कमान इस समय महिलाओं के हाथ में है। भारत के सबसे बड़े बैंक स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की चौबीसवीं चेयरपर्सन अरुंधती भट्टाचार्य इसके दो सौ से ज्यादा वर्षों के इतिहास में पहली ऐसी महिला हैं जिन्होंने इस पद को संभाला। अरुधंती भट्टाचार्य ने स्टेट बैंक ऑफ मैसूर में चेयरपर्सन के पद पर भी कार्य किया है तथा स्टेट बैंक ऑफ इंडिया व स्टेट बैंक ऑफ पटियाला की डायरेक्टर भी रह चुकी हैं। ऊषा अनंथसुब्रमण्यम भारतीय महिला बैंक की पहली चेयरमैन और मैनेजिंग डायरेक्टर रहीं, जो नवंबर 2013 में सिर्फ महिलाओं के लिए आरम्भ हुआ था। बैंक ऑफ बड़ौदा से अपने कैरियर की शुरुआत करने वाली ऊषा पंजाब नेशनल बैंक की एक्जिक्युटिव डायरेक्टर भी रह चुकी हैं। आईसीआईसीआई बैंक से अपने कैरियर की शुरुआत करने वाली शिखा शर्मा एक्सिस बैंक की सी.ई.ओ और मैनेजिंग डायरेक्टर हैं।

टाइम मैगजीन द्वारा टॉप 100 पावरफुल महिलाओं में शामिल बाइकॉन की चेयरपर्सन और मैनेजिंग डायरेक्टर किरन मजूमदार शॉ उन लोगों में से हैं जो

खुद की बदौलत अरबपति बनी हैं। किरन ने अपनी कंपनी को पूरी तरह से इंटीग्रेटेड बायोफार्मास्युटिकल एंटरप्राइज में बदल दिया, जो किफायती ड्रग्स बनाती है। 1989 में पद्मश्री और 2005 में पद्मभूषण से सम्मानित किरन के इस शानदार प्रयास ने न केवल बाइकॉन को, बल्कि भारत की फार्मास्युटिकल इंडस्ट्री को भी एक अलग पहचान दी। पेशे से चार्टर्ड अकाउंटेंट और फोर्ब्स व फॉर्च्यून के द्वारा पावरफुल बिजनेस वुमेन का दर्जा प्राप्त नैना लाल किदवई इस समय एचएसबीसी की ग्रुप जनरल मैनेजर और कंट्री हेड हैं। टाइम मैगजीन ने भी 2002 में इन्हें सबसे अधिक पावरफुल बिजनेस वुमन का दर्जा दिया था। नैना लाल किदवई को पद्मश्री का सम्मान भी मिल चुका है। अरुणा जयंती केपजेमिनी इंडिया की सी.ई.ओ हैं, जो केपजेमिनी ग्रुप के बड़े बिजनेस यूनिट में से एक है। अपने दो दशकों के आईटी सर्विस इंडस्ट्री के अनुभव में अरुणा ने लगभग सभी बिजनेस यूनिट्स का कामकाज देखा, जिसमें कंसल्टिंग, टेक्नेलॉजी सर्विसेज और आउटसोर्सिंग सर्विसेज शामिल हैं। अपोलो ग्रुप की मैनेजिंग डायरेक्टर प्रीथा रेड्डी का उद्देश्य अरबों लोगों को गुणात्मक स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराना है और भारत को एक ग्लोबल हैल्थकेयर डेस्टिनेशन बनाना है। सामान्यतः ट्रैक्टर का नाम सुनते ही किसी पुरुष का चेहरा ही सामने आता है। पर भारत के तीन सबसे बड़े ट्रैक्टर निर्माताओं में से एक टैफे की सी.ई.ओ मल्लिका श्रीनिवासन ने एक महिला होने के बावजूद इसे नई ऊंचाइयों पर पहुँचाया है। 2005 में उन्होंने आइशर मोटर्स का अधिग्रहण कर लिया। मीडिया के क्षेत्र में भी महिलाएं बखूबी स्थापित हो रही हैं। 2008 से एचटी मीडिया के चेयरपर्सन पद पर काबिज शोभना भरतिया शुरुआत से ही इससे जुड़ी हुई हैं। मशहूर उद्यमी केके बिरला की बेटी शोभना भरतिया को न्यूजपेपर इंडस्ट्री का 25 साल से भी अधिक का अनुभव है। वह कंपनी में संपादकीय नीति से संबंधित मामलों को भी बखूबी देखती हैं।

समय के साथ कंपनियों के निदेशक मंडल और उच्च प्रबंधकीय पदों पर महिलाओं की संख्या में नित बढ़ोत्तरी हो रही है। सेबी ने हाल ही में भारत की सूचीबद्ध कंपनियों के बोर्ड में कम से कम एक महिला निदेशक की नियुक्ति अनिवार्य कर दी है। देश में कंपनियों के निदेशक मंडल में महिलाओं की भागीदारी वर्ष 2010 में 5. 5 प्रतिशत थी जो वर्ष 2011, 2012 और 2013 में बढ़ती हुई क्रमशः 5.8, 6.2 और 6.7 प्रतिशत पर पहुँच गई। क्रेडिट सुइस रिसर्च ने विश्व की तीन हजार कंपनियों के 28 हजार शीर्ष पदों के आंकड़ों के आधार पर सितंबर 2015 में जारी 'वूमन इन बिजनेस' रिपोर्ट में दावा किया कि कंपनियों में महिला सीईओ नियुक्त करने के मामले में भारत विकसित देशों से काफी आगे निकल चुका है।

भारत में 8.9 फीसदी सीईओ पद पर महिलाएं हैं, जबकि वैश्विक औसत 3.9 फीसदी का है।

दुनिया की सबसे बड़ी इकोनॉमी अमेरिका में मात्र 3.5 प्रतिशत सीईओ महिला हैं। पर इसके बावजूद भी वैश्विक स्तर पर सीईओ पदों पर महिलाओं की भागीदारी बेहद कम है। अभी भी जिम्मेदारी देने के मामले में उनसे भेदभाव किया जाता है और उनके हिस्से में कम प्रभाव वाले पद ज्यादा आते हैं। शीर्ष प्रबंधन में महिलाओं की भागीदारी वैश्विक स्तर पर 12.9 फीसदी है, लेकिन सीईओ पदों पर उनका प्रतिशत मात्र 3.9 है। महिला सीईओ के मामले में भारत से आगे सिर्फ पुर्तगाल (33.3 प्रतिशत), बेल्जियम (16.7 प्रतिशत), सिंगापुर (15 प्रतिशत), थाईलैंड (12.5 प्रतिशत) तथा इंडोनेशिया (11.8 प्रतिशत) हैं। भारत (8.9 प्रतिशत) के बाद ब्रिटेन (5.1 प्रतिशत), अमेरिका (3.5 प्रतिशत), चीन (3.2 प्रतिशत) का नंबर आता है। रिपोर्ट के अनुसार जिन कंपनियों में महिलाएं प्रमुख होती हैं उनका प्रदर्शन बेहतर होता है और जिनके बोर्ड में महिलाएं ज्यादा होती हैं, वे कंपनियाँ डिविडेंड भी ज्यादा देती हैं। एक अन्य रिपोर्ट के मुताबिक महिला बोर्ड मेंबर वाली कंपनियाँ शेयर बाजार में भी अच्छा प्रदर्शन करती हैं। सभी पुरुष बोर्ड मेंबर वाली कंपनियों की तुलना में इनके शेयर ने 26 प्रतिशत ज्यादा रिटर्न दिया। अध्ययनों की मानें तो महिला निदेशक के होने से कंपनी को सकारात्मक फायदे भी होते हैं। महिलाएं न केवल बेहतर होती हैं, बल्कि प्रकृतिजन्य वह पुरुषों की अपेक्षाकृत ज्यादा संवेदनशील भी होती हैं। यॉर्क यूनिवर्सिटी में एसोसिएट प्रोफेसर एरन धीर ने एक अध्ययन में बताया कि महिला निदेशक के होने से कंपनी में बेहतर बातचीत, अच्छे फैसले, जोखिम संकट से निपटना, अच्छी मॉनिटरिंग, बोर्ड रूम में सकारात्मक बदलाव, बोर्ड का काम सुचारू तरीके से होना और पुरुषों के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं।

आर्थिक आँकड़े बता रहे हैं कि भारत 6–7 प्रतिशत विकास दर के साथ समृद्धि और संपन्नता की ओर अग्रसर है, पर क्या इस संपन्नता में महिलाओं का योगदान शून्य है। आर्थिक सशक्तिकरण समाज में प्रगति का प्रमुख मापदंड है पर इसके लिए नारियों का आर्थिक सशक्तिकरण भी जरूरी है। स्वयं सहायता समूहों की बदौलत गाँव–देहात से निकली तमाम महिलाएं आज सामाजिक–आर्थिक बदलाव की कहानियाँ गढ़रही हैं। मेहनत और हौसले से इन्होंने न केवल सामाजिक बंधन और रूढ़ियों को ध्वस्त किया बल्कि अपनी आर्थिक तरक्की की राह भी प्रशस्त की। इसमें कोई शक नहीं कि भारत में अगर पुरुषों की तरह महिलाओं को पेशेवर कामकाज के पूरे मौके मिलें तो इससे दस साल बाद देश के सकल घरेलू उत्पाद

यानी जीडीपी में 16 फीसदी का इजाफा हो सकता है। व्यवसाय और आर्थिक क्षेत्र में शोध करने वाले संस्थान ग्लोबल मैकेंजी इंस्टीट्यूट की ताजा रिपोर्ट में ये बात कही गई है। इस रिपोर्ट के अनुसार कामकाजी क्षेत्र में लैंगिक समानता के मामले में भारत अपने कई पड़ोसी देशों से भी पीछे है। भारत में महिलाओं की आबादी 61.2 करोड़ है लेकिन देश की श्रम शक्ति में उनकी हिस्सेदारी केवल 31 फीसदी है। इस आधार पर भारत के जीडीपी में महिलाओं का योगदान अभी 17 फीसदी मात्र है, जो कि 37 फीसदी के वैश्विक औसत से काफी कम है। श्रम शक्ति में इस तरह की लैंगिक असमानता की एक वजह महिला और पुरुष की परिवार और समाज में पारंपरिक भूमिकाओं से जुड़ी धारणाओं को भी माना जाता है। महिलाओं को श्रम शक्ति का हिस्सा बना कर आर्थिक विकास दर को बढ़ाने की संभावनाएं बेहतर बनाई जा सकती हैं और जीडीपी में साल 2025 तक 46 लाख करोड़ रुपये जुड़ सकते हैं। साथ ही इससे भारत के लिए 1.4 फीसदी सालाना इंक्रिमेंटल जीडीपी वृद्धि का इंतजाम हो सकता है।

मेकिंजी ग्लोबल इंस्टिट्यूट की रिपोर्ट "द पावर ऑफ पैरिटी : एडवांसिंग वुमेन ईक्वलिटी इन इंडिया" के मुताबिक, लिंग समता को बढ़ावा देने से दुनियाभर की आर्थिक वृद्धि दर बढ़ेगी और खुशहाली आएगी। हालांकि इसका जितना असर भारत में होगा, उतना कहीं और नहीं होगा। भारतीय अर्थव्यवस्था तभी गति पकड़ सकती है, जब यह कार्य स्थल पर लिंग विभेद समाप्त करे। पर इसके लिए समाज में लड़कियों से भेदभाव की समस्या से निपटना होगा और और सभी संबंधित पक्षों को इस बदलाव के लिए एक राष्ट्रीय एजेंडे पर काम करना होगा और संवेदनशील होकर इसके प्रति सोचना होगा। इस बात को अंततः स्वीकार करने की जरुरत है कि नारी के आर्थिक सशक्तिकरण से न सिर्फ नारी समृद्ध होगी अपितु परिवार, समाज और राष्ट्र भी सशक्त और समृद्ध बनेंगे। नारी का आर्थिक सशक्तिकरण आज सिर्फ एक जरूरत नहीं बल्कि विकास और प्रगति का अनिवार्य तत्व है।

**मो.–09413666599**

○○○

# वक्त की मांग है महिलाओं की वित्तीय सुरक्षा

❑ डॉ0 प्रीति अदाणी

किसी भी समुदाय, वर्ग का सशक्तीकरण एक दीर्घकालिक सांस्कृतिक परिवर्तन है जिसे प्रकट होने में कई वर्ष लग जाते हैं। महिलाएं परिवारों के सशक्तीकरण में प्रमुख भूमिका निभाती हैं। इससे उनकी पीढ़ी में तो बदलाव आता ही है, समाज में भी सकारात्मक परिवर्तन आता है। लैंगिक असमानता को दूर करने के लिए प्रयासों के साथ उन उपायों पर नजर रखना जरूरी है जिनसे कहीं जल्द सार्थक नतीजे सामने आते हों। अगर हम बदलाव की बड़ी पहल करना चाहते हैं तो महिलाओं के लिए वित्तीय स्वतंत्रता लाना महत्वपूर्ण होगा। महिलाओं के लिए कमाई के अवसर पैदा करने वाली सामुदायिक पहल संशय के माहौल को दूर करने में मददगार बनती है। आमतौर पर ग्रामीण भारत की महिलाएं चुनौतियों के दो व्यापक स्तरों पर जूझती हैं। पहला, आत्मविश्वास की कमी को लेकर और दूसरे धारणाओं से लड़ने का दबाव, लेकिन जीविकोपार्जन के अवसर प्रदान करने वाली योजनाओं के जरिये इन दबावों से अच्छी तरह निपटा जा सकता है।

भारत की महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर पैदा करना बहुत ही लाभकारी साबित हो सकता है। कुछ वर्ष पहले मैकिंजी ग्लोबल ने अपने एक अध्ययन में दावा किया था कि अगर भारत अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी के लिए समान अवसर पैदा कर सके तो वह साल 2025 तक अपने सकल घरेलू उत्पाद में 60 प्रतिशत तक वृद्धि कर सकता है। इस अध्ययन में यह भी कहा गया था कि दुनिया भर में लिंगभेद की समस्या को समाप्त करने से वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद में 28 ट्रिलियन डॉलर की भारी वृद्धि हो सकती है। जब एक गृहिणी आत्मनिर्भर हो जाती है तो उसका लाभ बढ़ी हुई पारिवारिक आय तक ही सीमित नहीं रहता है, बल्कि उसके द्वारा परिवार में लाए गए परिवर्तन पीढ़ियों की सोच में दिखने लगते हैं। इसीलिए अपने माता–पिता की तुलना में नई पीढ़ी शिक्षा स्वास्थ्य और सतत विकास के प्रति ज्यादा जागरुक है। महिलाओं  में वित्तीत स्वतंत्रता देश में सांस्कृतिक परिवर्तन प्रारंभ करने की क्षमता रखती है। स्किल इंडिया अभियान यानी कौशल प्रशिक्षण के जरिये करीब 17.72 लाख महिलाओं को प्रशिक्षित किया गया है। कौशल विकास केन्द्रों में

प्रशिक्षित 10 में से लगभग 8 महिलाओं को या तो आजीविका के अवसर मिले हैं या उन्होंने अपना प्रशिक्षण पूरा करने के तुरंत बाद स्वरोजगार शुरु किया है। इनमें से अधिकांश परिधान, ब्यूटी एंड वेलनेस और स्वास्थ्य देखभाल के क्षेत्र में शामिल हुई हैं। इन आंकड़ो से दो बातें उभर कर सामने आती हैं। अपनी भौगोलिक सीमाओं और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के बावजूद आज महिलाएं घूंघट से परे जीवन को देखने के लिए उत्सुक हैं। इसका यह भी अर्थ है कि रोजगार का एक बाजार मौजूद है जो इस अप्रयुक्त कार्य बल का उपयोग करना चाहता है। हालांकि किसी क्षेत्र विशेष में निपुणता आवश्यक है, लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण है आत्मविश्वास। आज महिलाओं के भीतर अपनी पहचान को सामने लाने और अपने बच्चों के भविष्य को बेहतर बनाने के लिए गहरी उत्सुकता है। चूंकि भारत को दुनिया के सबसे बडे उपभोक्ता बाजार के रुप में माना जा रहा है, इसलिए आने वाले समय में ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के तमाम अवसर उपलब्ध होंगे। हमें इस मौके का लाभ उठाने के लिए महिलाओं के लिए अधिक से अधिक अवसर पैदा करने की राह आसान करनी चाहिए।

महिलाओं के लिए स्वतंत्र वातावरण बनाने के अलावा वित्तीय सुरक्षा हासिल करने के लिए उन्हें शिक्षित करना भी उतना ही आवश्यक है। समावेशी विकास को लेकर सरकारी सुधारों के माध्यम से बचत बैंक खाता खोलने के प्रति पहले ही व्यापक जागरुकता आ चुकी है। अब खाते में न्यूनतम धन रखने की आवश्यकता, बीमा योजनाओं और संपत्ति में निवेश करने की पेशकश सहित कई प्रयास किए जा रहे हैं ताकि महिलाएं वित्तीय रुप से सुरक्षित हों उदाहरण के लिए मुद्रा ऋण के 10 लाभार्थियों में से लगभग 8 लाभार्थी महिलाएं हैं। यह एक महत्वपूर्ण आंकड़ा है। वर्ल्ड इकोनामिक फोरम के संस्थापक और कार्यकारी अध्यक्ष श्वाब क्लॉज के अनुसार भविष्य की नौकरियां शीर्ष कंपनियों द्वारा नहीं बल्कि युवा उद्यमियों द्वारा उपलब्ध कराई जाएगी। हम देख सकते हैं कि भारत में महिलाओं की एक नई पीढ़ी युवा उद्यमी के रुप में तैयार होने के कगार पर है। निश्चित रुप से वह आगे चलकर दूसरी महिलाओं के लिए नौकरियों का महत्वपूर्ण स्रोत्र बन जाएगी।

○○○

# मकर संक्रान्ति

❑ अरूण तिवारी

संक्रान्ति यानी सम्यक् क्रान्ति, इस नामकरण के नाते तो मकर संक्रान्ति सम्यक् क्रान्ति का दिन है, एक तरह से सकारात्मक बदलाव के लिए संकल्पित होने का दिन। ज्योतिष व नक्षत्र विज्ञान के गणित के मुताबिक कहें तो मकर संक्रान्ति ही वह दिन है जब सूर्य उत्तरायण होना शुरू करता है और एक महीने मकर राशि में रहता है, तत्पश्चात् सूर्य अगले पाँच माह कुंभ, मीन,मेष,वृष और मिथुन राशि में रहता है। इसी कारण मकर,संक्रान्ति पर्व का नाम 'उत्तरायणी' भी है। दक्षिण में इसे पोंगल के रुप में मनाया जाता है। पहले दिन भोगी 'पोंगल' दूसरे दिन सूर्य पोंगल, तीसरे दिन मट्टू पोंगल और चौथे तथा आखिरी दिन कन्या पोंगल। मट्टू पोंगल को केनू पोंगल भी कहते हैं। भोगी पोंगल पर साफ–सफाई कर कूड़े का दहन, सूर्य पोंगल को लक्ष्मी पूजा व सूर्य को नैवेद्य अर्पण–मट्टू पोंगल को पशुधन पूजा, कन्या पोंगल को बेटी और दामाद का विशेष स्वागत–सत्कार, 13 जनवरी का दिन पंजाब–हरियाणा के कथानक पर आधारित लोहड़ी पर्व के लिए तय है ही।

## सूर्य पर्व

एक दिन का हेरफेर हो जाये तो अलग बात है, अन्यथा मकर संक्रान्ति का यह शुभ दिन, हर वर्ष अंग्रेजी कलेण्डर के हिसाब से 14 जनवरी को आता है। इसका कारण यह है कि मकर संक्रान्ति एक ऐसा त्योहार है, जिसकी तिथि का निर्धारण सूर्य की गति के अनुसार होता है,जबकि भारतीय पंचांग की अन्य समस्त तिथियाँ, चन्द्रमा की गति के आधार पर निर्धारित की जाती हैं। स्पष्ट है कि मकर संक्रान्ति, सूर्य पर्व है।

## दिशा–दशा बदलाव सूचक पर्व

इससे पूर्व 16 जुलाई को सूर्य कर्क राशि में प्रवेश करने के बाद करीब छह माह के दौरान सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और धनु राशि में रहता है। छह माह की यह अवस्था सूर्य की दक्षिणायण अवस्था कहलाती है। दक्षिणायण अवस्था में सूर्य का तेज कम और चन्द्र का प्रभाव अधिक रहता है। दक्षिणायण में दिन छोटे होने लगते हैं और रातें लंबी। यह अवस्था वनस्पतियों की उत्पत्ति में सहायक मानी गई है। उत्तरायण होते ही सूर्यका तेज बढ़ने लगता है। दिन लंबे होने लगते है और रातें छोटी। इस तरह मकर संक्रान्ति एक तरह से सूर्य की दिशा और मौसम की दशा

बदलने का सूचक पर्व भी है। शिशिर ऋतु की विदाई और बसंत के आगमन का प्रतीक पर्व!

इससे पूर्व 14 दिसंबर से 13 जनवरी तक का समय एक ऐसे महीने के तौर पर माना गया है, जिसमें शुभ कार्य न किए जाऐं, एक तरह से शादी–ब्याह के उत्सवों के बाद संयम की अवधि को 'खरमास' भी कहा गया है। ''पौष–माघ की बादरी और कुवारा घाम,

**ये दोनों जो सह सके, सिद्ध करे सब काम।''**

हम सभी जानते है कि पौष के महीने में माघ की तुलना में ज्यादा कठिन बदली होती है। श्रावण–भादों की तरह इस अवधि में भी सूर्य से पूर्ण संपर्क नहीं होता। जठराग्नि मंद पड़ जाती है। भोजन का संयम जरुरी हो जाता है। संभवतः इसलिए भी उक्त अवधि 'खरमास'के तौर पर शुभ कार्यों हेतु वर्जित किया गया हो। इसी उत्तरायण में शरीर छूटे, तो दक्षिणायण की तुलना में उत्तम माना गया है। अब इन मान्यताओं का विज्ञान क्या है? कभी जानना चाहिए।

### दान पर्व

सामान्यतया स्नान, दान,तप, श्राद्ध और तर्पण आदि मकर संक्रान्ति के महत्वपूर्ण कार्य माने गये हैं। चूड़ा,दही,उड़द, तिल, गुड़, गो आदि मकर संक्रन्ति के दिन दान के भी पदार्थ और स्वयं ग्रहण करने के भी महाराष्ट्र में विवाहिता द्वारा अपने पहली संक्रान्ति पर अन्य सुहागिनों को कपास, तेल और नमक दान की प्रथा है। तिल–गुड़ बाँटना और मीठे बोल का आग्रह करने का सामान्य चलन तो है ही । स्नान करें,पर्व कर्म करें और सूर्य का आशीष लें, किंतु जयपुर, राजस्थान में आप मकर संक्रान्ति को पतंग उड़ाने की उमंग के पर्व के रुप में पायेंगे। आकाश,पतंगों और डोर के संजाल से पटा होगा और छतें हर उम्र के लोगों से। जैसे रंग–बिरंगी छतरी बनाकर सभी सूर्यका स्वागत करने निकल आए हों। यों राजस्थान मे मकर संक्रान्ति का दूसरा रुप सुहागिनों द्वारा सुहाग सूचक 14 वस्तुओं का पूजन तथा उनका ब्राह्यणों को दान के रुप में देख सकते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में इस दिन खिचड़ी का भोजन करने तथा उड़द –चावल, नमक खटाई आदि दान करने का रिवाज है। इस नाते वहाँ इस पर्व को 'खिचड़ी' कहकर पुकारा जाता है। असम में मकर संक्रान्ति को 'माघ बिहू' व 'भोगाली बिहू' के नाम से जानते हैं।

### संगम स्नान पर्व

''माघ मकर गति जब रवि होई। तीरथपति आवहु सब कोई।।''

अर्थात माघ के महीने में जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश करे, तो सभी लोग तीर्थों के राजा यानी तीर्थराज प्रयाग में पधारिये प्रयाग यानी संगम। संगम सिर्फ नदियों का ही नहीं, विज्ञान और धर्म, विचार और कर्म, संन्यासी और गृहस्थ तथा धर्मसत्ता, राजसत्ता,और समाजसत्ता का संगम। कभी ऐसा ही संगम पर्व रहा है, मकर संक्रान्ति। कोई न्योता देने की जरुरत नहीं, सभी को पता है कि हर वर्ष, मकर संक्रान्ति को प्रयाग किनारे जुटना है। सभी आते हैं, बिना बुलाए। नदी पूजन का मतलब ही होता है– स्नान, पान और दान।

**प्रयाग किनारे ही क्यों?**

इस प्रश्न के उत्तर में जानकार कहते हैं कि खासकर, इलाहाबाद,प्रयाग की एक विशेष भौगोलिक स्थित है। मकर संक्रान्ति की प्रयाग, आकाशीय नक्षत्रों से निकलने वाली तरंगो का विशेष प्रभाव केन्द्र होता है। जिन–जिन तिथियों में ऐसा होता है, उन–उन तिथियों में प्रयाग में विशेष स्नान की तिथि होती है। इन तिथियों का मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से विशेष महत्व है । बहुत संभव है कि इसी तरह ऊपर उत्तराखण्ड में स्थित पंच प्रयागों की भी कोई ख़ास स्थिति हो, इसका अध्ययन होना चाहिए।

**गंगासागर एक बार**

जहाँ गंगा समुद्र से संगम करती है, वह स्थान 'गंगासागर' के नाम से जाना जाता है। इसी स्थान पर कपिल मुनि द्वारा राजा सगर के 60 हजार पुत्रों के भस्म करने की कथा है। राजा भगीरथ के तप से धरा पर आई माँ गंगा द्वारा इसी स्थान पर सगर पुत्रों के उद्धार का कथानक है। संभवतः इसीलिए मकर संक्रान्ति के अवसर पर गंगासागर में जैसा स्नान पर्व होता है, कहीं नहीं होता। क्या उत्तर, क्या दक्षिण और क्या पूर्व, क्या पश्चिम,पूरे भारतवर्ष से लोग गंगासागर पहुँचते हैं कहते हुए 'सारे तीरथ बार–बार,गंगासागर एक बार।' कपिल मुनि का आश्रम, आज भी गंगासागर के तीर्थ यात्रियों के लिए विशेष आकर्षण का पूज्य स्थान है। आखिरकार, कपिल मुनि का दिया शाप न होता, तो भगीरथ प्रयास क्यों होता और गंगा गंगासागर तक क्यों आती?

**मंथन पर्व**

गौर कीजिए कि आज हम मकर संक्रान्ति को माघ मेले और अर्थकुंभ के प्रथम स्नान पर्व के रुप में ज्यादा भले जानते हों, किंतु वास्तव में मकर संक्रान्ति,एक मंथन पर्व है, सम्यक् क्रान्ति हेतु चिंतन–मनन का पर्व। माघ मेले के दौरान समाज, राज

और प्रकृति को लेकर किए अनुसंधानों का प्रदर्शन, उन पर मंथन, नीति–निर्माण, रायशुमारी, समस्याओं के समाधान और अगले वर्ष के लिए मार्गदर्शी निर्देश, इन सभी महत्वपूर्ण कार्यों की विमर्शशालाओं का संगम जैसा हो जाता था कभी अपना पौराणिक प्रयाग। ऋषियों के किए अनुसंधानों पर राज और धर्मगुरु चिंतन कर निर्णय करते थे। नदी –प्रकृति के साथ व्यवहार हेतु तय पूर्व नीति का आंकलन और तदनुसार नव नीति का निर्धारण का मौके भी थे,माघ मेले और कुंभ। जो कुछ तय होता था, धर्मगुरु अपने गृहस्थ शिष्यों के जरिए उन अनुसंधानों/नीतियों/प्रावधानों को समाज तक पहुँचाते थे। माघ मेला और कुंभ में कल्पवास का प्रावधान है ही इसलिए।

## कितना महत्वपूर्ण कल्पवास

पौष माह के 11वें दिन से शुरु होकर माघ के 12वें दिन तक कल्पवास करने का प्रावधान है। कल्पवासी प्रयाग में आज भी इस अवधि के दौरान जुटते हैं। आमतौर पर कल्पवासी उम्रदराज होते हैं,एक तरह से परिवार के ऐसे मुखिया, जो अब मार्गदर्शी भूमिका में हैं। ये परिवार प्रमुख कल्पवास के दौरान अपने परिवार से पीढ़ी –दर पीढ़ी संबद्ध गुरु –परिवार से मिलते हैं। उनके मिलने के स्थान तय होते हैं। इन स्थानों पर गुरु सान्निघ्य में कल्पवासी बेहतर गृहस्थ जीवन का ज्ञान प्राप्त करते थे, यही परंपरा है। दुर्योग से हमारे स्नान–पर्व आज धर्मसत्ता के दिखावट और सजावट के पर्व बनकर रह गये हैं।

## कैसे फिर बने सम्यक् क्रान्ति का मंथन पर्व

आइये, मकर संक्रान्ति को फिर से सम्यक् क्रान्ति मंथन पर्व बनायें, जिन नदियों के किनारे जुटते हैं, उनकी ही नहीं, राज–समाज और संतों की अविरलता–निर्मलता सुनिश्चित करने का पर्व। यह कैसे हो? राज, समाज और प्रकृति का प्रतिनिधित्व करने वाले ऋषियों के बीच राष्ट्र और प्रकृति के प्रति जन–जन के कर्म संवाद की अविरलता और निर्मलता सुनिश्चित किए बगैर यह संभव नहीं। आइए यह सुनिश्चित करें। इसी से भारत पुनः भारतीय हो सकेगा मौलिक भारत!

**मो0 9868793799**

○○○

# स्वतंत्रता और भारतीय लोकतंत्र का आज

❑ कुलदीप कुमार

समकालीन भारत में अगर आज कोई एक विषय सबसे अधिक प्रासंगिक है,तो वह लिबर्टी यानी स्वतंत्रता। राज्य और शासन की आधुनिक अवधारणा अपने पूर्ण प्रस्फुटित रुप में 1789 में फ्रांस की राज्यक्रांति के समय सामने आई थी, क्योंकि क्रांतिकारियों के हाथों में 'लिबर्टी इक्वालिटी–फ्रैटरनिटी' (स्वतंत्रता–समानता–बंधुत्व) का झंडा था। यह आधुनिक समाज में रहने वाले नागरिक और उसके सामाजिक राजनीतिक पर्यावरण की संपूर्ण अवधारणा थी। राजनीतिक क्षेत्र में स्वतंत्रता का प्रथम दस्तावेजी प्रयास 1215 में इग्लैंड के शासक जॉन (1166–1216) के समय किया गया था, जब 1214 में उत्तरी फ्रांस में हुए युद्ध में पराजित होने के बाद उन्हें अपने विद्रोही सामंतों के दबाव के सामने झुकना पड़ा था और मैग्ना कार्टा यानी स्वतंत्रताओं के महान घोषणा–पत्र पर हस्ताक्षर करने पड़े थे। इस घोषणा–पत्र में पहली बार राजा के अधिकारों पर औपचारिक और कानूनी ढंग से अंकुश लगाया गया था। यह महान घोषणा–पत्र अगली सदियों में राजनीतिक–सामाजिक परिवर्तन के लिए सक्रिय होने वाले सुधारकों, चिंतकों और क्रातिकारियों के लिए प्रेरणास्रोत बना रहा।

फ्रांस की राज्यक्रांति के पीछे यूरोप के एज ऑफ एनलाइटेनमेंट यानी ज्ञानोदय काल में उभरे स्वतंत्रताकामी विचारों की बहुत बड़ी भूमिका थी । राज्यक्रांति से ठीक एक वर्ष पहले उस समय के फ्रांस के शीर्षस्थ लेखक और विचारक वोल्तेयर का निधन हुआ था इस पर विवाद है कि यह उद्धरण उनका है या नहीं लेकिन इस पर कोई विवाद नहीं कि यह वोल्तेयर के विचारों को प्रामाणिक रुप से व्यक्त करता है। वोल्तेयर के नाम के साथ जुड़े इस उद्धरण में कहा गया है कि 'हालांकि मैं आपके विचारों से पूरी तरह असहमत हूं लेकिन मैं अपनी जान की कीमत पर भी उन्हें व्यक्त करने के आपके अधिकार की रक्षा करुंगा। स्वतंत्रता की अवधारणा में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और असहमति की स्वतंत्रता निहित हैं। लोकतंत्र की नींव भी स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के मुल्यों पर ही रखी गई है। इन मूल्यों के बिना लोकतंत्र शासन–व्यवस्था का ऊपरी खोल भर बनकर रह जाता है। वह स्वतंत्र नागरिक और राज्यसत्ता या शासन –तंत्र के बीच का स्वस्थ्य संबंध नहीं बन पाता। ऐसी स्थिति में नागरिक स्वतंत्रताओं और अधिकारों की हिफाजत करने के लिए आंदोलनों और संघर्षो की जरुरत पड़ती है। उल्लेखनीय है कि 1958 में स्वीकृत फ्रांस के संविधान में राज्यक्रांति के स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के आदर्शो को औपचारिक रुप से

शामिल किया गया और अब वहां के संविधान के अनुसार शासन इन मूल्यों के आधार पर ही किया जाना चाहिए।

उन्नीसवीं सदी में भारत के विभिन्न हिस्सों में यूरोप के ज्ञानोदय जैसा रुझान देखा गया जिसे आम तौर पर नवजागरण या पुनर्जागरण कहा जाता है। राजा राममोहन राय, केशव चंद्र सेन,देवेंद्रनाथ टैगोर, स्वामी दयानंद,ज्योतिबा फुले जैसे अनेक विचारकों एवं समाज सुधारकों ने अपने लेखन और सक्रिय कर्म से राजनीतिक और सामाजिक बेड़ियों को काटने की चेतना पैदा की। इसी का एक प्रतिफलन 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के रुप में सामने आया। नागरिक अधिकारों की चेतना और उन्हें प्राप्त करने के लिए संषर्ष करने की इच्छा इसी काल में पनपी। कांग्रेस की स्थापना के पीछे यह भी एक महत्वपूर्ण कारण था, क्योंकि भारतीय अपने लिए वही अधिकार और सुविधायें चाहते थे जो उनके अंग्रेज शासकों को भारत में मिली हुई थीं या फिर अंग्रेज नागरिकों को ब्रिटेन में प्राप्त थीं।

संभवतः इसकी पहली स्पष्ट उपस्थिति 1895 में प्रस्तुत किए गए भारतीय संविधान विधेयक में देखने को मिली, जिसकी धारा 16 में स्वतंत्र अभिव्यक्ति, केवल सक्षम अधिकारी द्वारा ही गिरफ्तारी और मुफ्त सरकारी शिक्षा जैसी बातें शामिल की गई थीं। 1917 और 1919 के बीच कांग्रेस के अधिवेशनों में अनेक ऐसे प्रस्ताव पारित किये गए, जिनमें नागरिक अधिकारों और अंग्रेजों के समान दर्जा दिए जाने की मांग की गई थी। एक प्रस्ताव में तो यह भी कहा गया था कि ब्रिटिश संसद भारतीय प्रजाजनों के लिए स्वतंत्र प्रेस, स्वतंत्र अभिव्यक्ति और कानून के सामने समानता के अधिकार देने वाला विधेयक पारित करें। अंग्रेज होते हुए भी एनी बेसेंट ने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय पहल की और विधेयकों के मसौदे प्रस्तुत करके ब्रिटिश सरकार से भारतीयों के लिए विभिन्न नागरिक स्वतंत्रताओं की मांग को उठाया। यानी नागरिक स्वतंत्रताओं और अधिकारों के लिए संघर्ष भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए चलने वाले आंदोलन का अभिन्न अंग था। इसलिए स्वाधीन भारत के संविधान में बुनियादी अधिकारों का स्पष्ट रुप से उल्लेख किया गया है और कहा गया है कि राज्य इनका उल्लंघन नही कर सकता । सात भागों में विभक्त ये अधिकार हैं – आजादी का अधिकार, समानता का अधिकार, शोषण के खिलाफ अधिकार, धर्म की आजादी का अधिकार, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकार, संपत्ति का अधिकार और संवैधानिक उपचार का अधिकार। सभी नागरिकों को अपने–अपने धर्म का पालन और प्रचार–प्रसार करने, इकट्ठा होने और आने–जाने का अधिकार है। स्थितियों के अनुसार इन अधिकारों पर विवेक सम्मत बंदिशें लगाई जा सकती हैं, लेकिन निरंकुश ढंग से उनमें कटौती नहीं की जा सकती।

लेकिन फ्रांस की राज्यक्रांति से भी लगभग सौ साल पहले मुगल बादशाह अकबर धर्म के क्षेत्र में स्वतंत्रता का अधिकार दे रहे थे। उनके दरबार में 1580 से 1582 तक दो वर्ष गुजारने वाले पुर्तगाली जेसुइट पादरी फादर अंटोनियो मोंसारेट ने उनके बारे में शिकायती स्वर में लिखा कि वह सभी को अपने–अपने धर्म का पालन करने की छूट देकर एक तरह से सभी धर्मों का उल्लंघन कर रहे थे। फादर मोंसारेट का यह कथन उनके इस विश्वास पर आधारित था कि ईसाई धर्म सर्वश्रेष्ठ धर्म है और इस्लाम को मानने वाले भी अपने धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ समझते हैं। इसलिए अन्य धर्मावलंबियों को धार्मिक छूट देना अनुचित है। लेकिन अकबर इस संकुचित सोच के नहीं थे। पढ़ना –लिखना न जानते हुए भी उन्होंने अनेक धर्मों के ग्रंथों को पढ़वाकर सुना था और वह अक्सर विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों को बुलाकर उनके बीच दार्शनिक संवाद और शास्त्रार्थ कराते थे और गहरी रुचि के साथ सुनते थे। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि उनके उत्तराधिकारी धीरे–धीरे इस नीति पर चलना कम करते गए। लेकिन यह भी सच है कि परवर्ती काल में मुगल दरबार में संस्कृति विद्वानों को भी आश्रय मिलता रहा और संस्कृत ग्रंथों के फारसी में अनुवाद का क्रम भी जारी रहा।

अकबर आस्था की जगह अक्ल यानी विवेक को तरजीह देने के पक्ष में थे। उन्होंने हिंदुओं के अवतारवाद और यहूदियों, ईसाइयो एवं मुसलमानों के पैगंबरवाद के बारे में खुलकर अपना संदेह व्यक्त किया था। अकबर ने हिंदुओं में प्रचलित सती प्रथा और बेटियों को पुश्तैनी विरासत में बेटों की तुलना में कम हिस्सा देने के इस्लामी कानून की आलोचना भी की थी।

स्वतंत्रता के लिए समानता और बंधुत्व अनिवार्य है। किसी एक के बिना दूसरे के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व के लिए ये तीनों ही एक साथ जरुरी हैं। बंग्लाभाषी पूर्वी पाकिस्तान पर उर्दू को जबरदस्ती लादा गया और वहां के रहने वालों से अपनी भाषा में काम करने की स्वतंत्रता छीन ली गई। इसका नतीजा 1971 में पाकिस्तान के टूटने के रुप में सामने आया हमारे देश में भी समय समय पर अहिंदी भाषी लोगों पर हिंदी थोपने के प्रयास होते रहे हैं और पिछले कुछ वर्षों के दौरान इनमें काफी तेजी भी आती दिखी है। ऐसा छद्म राष्ट्रवाद सबसे अधिक नुकसान राष्ट्र को ही पहुंचाता है, क्योंकि यह राष्ट्रीय एकता को तोड़ने की स्थितियों का निर्माण करता है।

संविधान ने धर्म के साथ–साथ संस्कृति के पालन की भी स्वतंत्रता दी है यानी हर एक को अधिकार है कि वह अपनी मर्जी के मुताबिक खाए और पहने। लेकिन पिछले दशकों के दौरान खाने–पीने और पहनने–ओढ़ने पर भी बंदिशें लगाने की कोशिशें की जाती रही हैं। इसमें राज्यसत्ता की भागीदारी भी देखी गई है। उत्तर प्रदेश में नोएडा से सटे दादरी में कुछ वर्ष पहले वहां के एक

निवासी अखलाक के फ्रिज में गोमांस का संदेह होने पर भीड़ ने उसकी हत्या कर दी। ऐसी ही कई हत्याएं देश के अन्य हिस्सों में भी होती रही हैं संविधान में राज्य का एक उत्तरदायित्व वैज्ञानिक चेतना का निर्माण और उसे प्रोत्साहन देना भी है। लेकिन इस मामले में पिछले कुछ वर्षों से नितांत विज्ञान–विरोधी विचारों का खुल कर प्रचार प्रसार किया जा रहा हैं। यदि यह काम निजी संस्थाएं या संगठन कर रहे होते, तो वह इतना आपात्तिजनक नहीं होता जितना यह कि इस काम में मंत्री, सांसद और विधायक भी बढ़–चढ़ कर हिस्सा ले रहे हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बिना किसी भी तरह की स्वतंत्रता की कल्पना नहीं की जा सकती। इस समय स्थिति यह है कि यदि किसी अंतरराष्ट्रीय मंच पर आमंत्रित होने के बाद कोई पत्रकार भारत में भीड़ द्वारा गाय या श्रीराम के नारे के बहाने किसी निरीह व्यक्ति को घेरकर मार देने की घटनाओं का जिक्र करता है, तो प्रसार भारती के अध्यक्ष उसे आमंत्रित करने के औचित्य पर ही प्रश्नचिन्ह लगा देते हैं। विदेश मंत्री भी अध्यक्ष के पक्ष में बयान जारी करते हैं और दोनों का आशय यह है कि इस तरह की घटनाओं से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि भारत में धार्मिक स्वतंत्रता किसी तरह के दबाव में है, और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर इनका उल्लेख करने का मतलब देश की छवि बिगाड़ना है। ये बयान स्वयं इस बात के प्रमाण है कि सरकार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने के लिए बेताब है।

जातियों में बंटे हुए समाज में–जहां झूठे जाति–दंभ के कारण ऊंची जाति के लोग निचली मानी जाने वाली जाति के दूल्हे का घोड़ी पर सवार होना तक बर्दाश्त नहीं कर सकते–सामाजिक समानता स्थापित करना एक लंबी प्रक्रिया है जिसके लिए सतत् प्रयास और संघर्ष की आवश्यकता है। हजारों साल के दौरान बनी मानसिकता और जातिप्रथा के साथ जुड़ी आर्थिक प्रणाली को एक झटके में नहीं बदला जा सकता । इसीलिए उसे समाप्त करने के लिए लगातार संघर्ष करना अनिवार्य है। सरकारी नौकरियों में और शिक्षा संस्थानों में आरक्षण होने के बावजूद उसे किस हद तक लागू किया जा सका है। यह सबके सामने है। अक्सर आरक्षित पद खाली पड़े रहने के बाद सामान्य पदों के साथ मिला दिए जाते हैं। स्वतंत्रता पर होने वाले आघातों के विरुद्ध अहिंसक प्रतिरोध करना हर भारतीय नागरिक का कर्तव्य है और यह कर्तव्य उसके लिए संविधान ने तय किया है। स्वतंत्रताओं का विस्तार ही लोकतंत्र का लक्ष्य होना चाहिए। किसी भी लोकतंत्र की परिपक्वता और प्रौढ़ता का सूचक उसके नागरिकों को उपलब्ध स्वतंत्रताएं हैं।

○○○

# वेदमाता गायत्री की कृपा से नौ निधियों की प्राप्ति

**❑ द्वारका प्रसाद चैतन्य**

साधारण शारीरिक बल से संपन्न व्यक्ति अपने बाहुबल से बड़े–बड़े कठिन कार्य कर डालता हैं और आश्चर्यजनक सफलताएँ प्राप्त कर लेता है, फिर आत्मबल संपन्न व्यक्ति के बारे में तो कहना ही क्या हैं शरीर जड़ पदार्थो का बना हुआ है,उसका बल भी जड़ एवं सीमित है। वह सीमा इतनी छोटी है कि पशु–पक्षी और छोटे दर्जे के जीवजंतु भी इस दृष्टि से बलवान से बलवान मनुष्य की अपेक्षा अधिक बलवान होते है। कुत्ते की सी घ्राणशक्ति, हिरन की सी चौकड़ी, बैल जैसी मजबूती, सिंह जैसी वीरता, मनुष्य में कहाँ होती हैं। और मछली की तरह जल में तथा पक्षियों की तरह हवा में वह आवागमन कहाँ कर सकता है? फिर भी मनुष्य सब प्राणियों से श्रेष्ठ–सृष्ठि का मुकटमणि बना बैठा है, इसका कारण उसका आत्मिक बल ही हैं।

यह आत्मिक बल,गायत्री तत्व को धारण करने से प्राप्त होता है। इसे धारण करने के और भी अनेक उपाय हैं, जिनके द्वारा संसार के महापुरुषों ने अपने को आत्मिक बल से संपन्न बनाकर बड़े–बड़े पुरुषार्थ किए हैं, उन अनेक उपायों में से एक सर्वसुलभ उपाय अध्यात्मविद्या के पारंगत आचार्यो ने ढूँढ़ निकाला है। उस उपाय का नाम है– गायत्री साधना । इस साधना से आत्मा में सात्विक चैतन्यता की मात्रा बढ़ती जाती हैं,फलस्वरुप जीवन की सभी दिशाओं में उसका प्रगति–परिचय मिलने लगता है। जब शरीर में रक्त बढ़ता है,तो हाथ, पाँव, अन्तःस्थल तथा ओंठ सभी में चैतन्यता, पुष्टि और लालिमा दृष्टिगोचर होने लगती है। जब कमरे में प्रकाश जलता हैं, तो सभी खिड़कियों में से उसकी रोशनी बाहर निकलती हैं। आत्मा में जब बल बढ़ता है, तो वह भी कई दिशाओं में उत्साहवर्द्धक ढंग से प्रकट होता है।

जीवन की प्रमुख दिशाएँ तीन होती हैं– (1) आत्मिक,(2) बौद्धिक, (3) सांसारिक। इन तीनों दिशाओं में आत्मबल बढ़ने से आनंददायक परिणाम प्राप्त होते है इन तीनों दिशाओं में तीन–तीन लक्षण ऐसे दिखाई पड़ते हैं,जिनसे जीवन सर्वसुखी बन जाता है इन नौ संपदाओं को नवनिधि भी कहते हैं। सिद्धियाँ देवताओं को प्राप्त होती हैं, ऋद्धिया असुरो को मिलती है और निधियाँ मनु की संतान मानव प्राणी को प्राप्त होती हैं आत्मिक क्षेत्र की तीन निधियाँ– (1) विवेक (2) पवित्रता (3) शांति हैं। बौद्धिक क्षेत्र की (1) साहस (2) स्थिरता (3) कर्तव्य निष्ठा हैं और सांसारिक क्षेत्र की तीन निधियाँ (1) स्वास्थ्य (2)समृद्धि (3) सहयोग हैं। यह नौ लक्षण जीवन की सफलता के हैं। इन्हीं नौ गुणों को ब्राह्मण के नवगुण बताया गया है। भगवान रामचन्द्र जी ने धनुष तोड़ने पर क्रुद्ध परशुराम जी से उनके नवगुणों की प्रशंसा करके उन्हें प्रसन्न किया था। **''नवगुण परम पुनीत तुम्हारे ।''**

**(1) विवेक**–जब आत्मा में गायत्री तत्व की स्थापना होती हैं,तो अंतःकरण में विवेक जाग्रत होता हैं। सत्–असत् का भेद स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता हैं। शास्त्र,

संप्रदाय, वर्ग, संस्कार, स्वार्थ आदि की चहारदीवारियों को पार कर सत्य का दर्शन करने वाली ऋतंभरा बुद्धि जाग्रत हो जाती है। उचित अनुचित, न्याय–अन्याय, कर्तव्य–अकर्तव्य, धर्म–अधर्म के भेद को अनेक व्यक्ति ठीक प्रकार नहीं समझ पाते। थोड़ी–सी अड़चन से उनकी वृद्धि अर्जुन की भाँति मोहग्रस्त हो जाती है, परंतु जिनमें विवेक की मात्रा बढ़ गई है, वे भ्रमित नहीं होते। वस्तुस्थिति की गहराई तक वह आसानी से पहुँच जाते हैं। सूक्ष्म मेधा तत्त्व दृष्टि अथवा ऋतंभरा बुद्धि से उनकी आत्मा संपन्न होती है, यह प्रथम निधि है।

**(2) पवित्रता**– भीतरी और बाहरी दो प्रकार की पवित्रता होती है। छल, कपट, दुराव, असत्य, दंभ आदि के कारण अंतः प्रदेश गंदा हो जाता है भीतर कुछ तथा बाहर कुछ भ्रम रहने से मनोभूमि में गंदगी भर जाती हैं इसकी दुर्गंधयुक्त कलुषता से नाना प्रकार के आंतरिक रोग उत्पन्न होते हैं। ऐसे लोग चोरी, व्यभिचार, शोषण, अनीति, लोभ, क्रोध, मद, मत्सर आदि घातक शत्रुओं के आसानी से शिकार हो जाते हैं। गायत्री तत्व की वृद्धि के कारण यह आंतरिक अपवित्रता नष्ट होती है और स्वभाव बालकों की तरह सरल, कोमल,स्वच्छ, निष्कपट बनता है। जो बात पेट में वही बाहर– जो बाहर वही पेट में। इस प्रकार के निष्कपट स्वभाव वाले व्यक्तियों का अंतःकरण बड़ा निर्मल रहता है और निर्मल हृदय में अपने आप दैवी संपदाओं का निवास होने लगता है।

वाह्य पवित्रता की दिशा में भी ऐसे मनुष्यों की अभिरुचि विशेष रुप से आकृष्ट रहती है। स्थान की, शरीर की, वस्त्रों की, प्रयोजनीय वस्तुओं की सफाई की ओर उनका बड़ा ध्यान रहता है। प्रकृति के बनाए हुए सुंदर स्वच्छ पदार्थो से उन्हें स्वभावतः प्रेम हो जाता है। बालक, वृक्ष, पौधे, पशु, पक्षी, नदी, पर्वतों की सुंदरता उन्हें बहुत सुहाती है। उनका दृष्टिकोण स्वच्छ पवित्र होने से उन्हें विचारों की, कार्यो की साधनों की स्वच्छता ही पसंद आती है।

**(3) शांति**– साधारण लोग जहाँ साधारण हानि–लाभ से उत्तेजित, अशांत, व्याकुल एवं बेकाबू हो जाते हैं। हर्ष, शोक, क्रोध, निराशा, भय, चिंता, मद आदि के तूफान उनके भीतर छोटी–छोटी घटनाओं के कारण उठते रहते है, जिनसे उनके चित में सदा अस्थिरता रहती है। विश्राम न मिलने के कारण आत्मा को बड़ा क्लेश रहता हैं, परंतु अंतःप्रदेश में गायत्री तत्व की अधिकता हो जाने से यह स्थिति नहीं रहती। परिवर्तनशील संसार, वस्तुओं का अवश्वंभावी रुपांतर, त्रिमुखात्मक सृष्टि का वैचित्रय जब उनकी समझ में भली प्रकार आ जाता हैं, फिर उन्हें न हर्ष का, न शोक का कोई भी अवसर व्यथित नहीं बनाता। बाह्य विक्षोभ आ जाएँ तो भी उनका मानसलोक शांत रहता है। ऐसी शांति को द्वंद्वातीत, स्थितिप्रज्ञ समत्व–योग, परमानंद आदि नामों से पुकारते हैं।

**(4) साहस**– शक्तियाँ होते हुए भी कितने ही मनुष्य आत्महीनता, तुच्छता, दीनता, संकोच, कायरता आदि मानसिक कमजोरियों के कारण सदा डरते झिझकते रहते हैं और कठिनाई चाहे कितनी ही छोटी हो, पर वे उसे बहुत बड़ा मान बैठते हैं और अपने

को उसे पार करने में असमर्थ अनुभव करते हैं। वह साहसहीनता बौद्धिक,जगतमें एक ऐसी आपत्ति है, जिसके कारण अनेक प्रकाशवान दीपक असमय में बुझ जाते हैं। योग्यताओं का अभाव जीवनोन्नति में जितना बाधक होता है, उससे कहीं अधिक बाधक साहस का अभाव होता है यह अंधकार केवल गायत्री तत्त्व की आध्यात्मिक किरणें प्रकाशित होने के साथ –साथ विलीन होता चलता है। साधक क्रमशः अधिक स्वावलंबी, आत्मविश्वासी, साहसी, निर्भय बनता हैं। वह न किसी को त्रास देना पसंद करता है और न सहता। आत्मगौरव से, आध्यात्मिक महानता से उसका मनोलोक आलोकित हो उठता है, तद्नुसार वह मनुष्योचित अधिकारों के लिए संघर्ष **यदि हम इस सार्वभौमिक प्रार्थना गायत्री पर विचार करें, तो हमें मालूम होगा कि यह वास्तव में कितना ठोस लाभ देती है। गायत्री हम में फिर से जीवन का स्रोत उत्पन्न करने वाली आकुल प्रार्थना है।** –सर राधाकृष्णन्

प्रयत्न और परिश्रम करता हुआ, परतंत्रताओं के बंधनों को काटता हुआ, स्वतंत्रता की ओर मुक्ति की ओर, द्रुतगति से अग्रसर होता है और आत्मोन्नति के लौकिक और पारलौकिक आनंद को प्राप्त करता है।

**(5) स्थिरता–** डाँवाडोल, अस्थिर वृत्तियों के मनुष्यों की जीवनयात्रा एक दिशा में नहीं चलती, फलस्वरुप उनका समय, श्रम और बलनिरर्थक खर्च होता रहता है। विचार, विश्वास, सिद्धांत कार्य, लक्ष, स्वाभाव एवं निष्ठा की एकरसता होने से जीवन प्रवाह एक नियत दिशा में प्रवाहित होता है और बूँद से घट भर जाने की उक्ति के अनुसार उसे अपने कार्य में सफलता मिलती है। चित्त में स्थिरता रहने से मस्तिष्क नियत दिशा में सोचता और कार्यमग्न रहता है, फलस्वरुप उस क्षेत्र में अनेक उन्नति के अवसर मिलते हैं। स्थिरता का आध्यात्मिक अर्थ है–मनोजय आत्म निग्रह,समाधि। इस मार्ग में प्रगति होने के साथ –सांसारिक और आत्मिक सुख–शांति के द्वार खुलने लगते हैं।

**(6) कर्तव्य निष्ठा–** इसे धर्म भावना अथवा ईश्वर परायणता कहते हैं। मानव जीवन की सर्व श्रेष्ठता प्राप्त होने के साथ–साथ प्राणी को एक भारी उत्तरदायित्व भी सौंपा गया हैं, जिसे धर्म–कर्तव्य कहते हैं। यह कर्तव्य–पालन ही जीवन का सच्चा मूल्य है इसे चुकाए बिना आत्मा न तो शांति लाभ कर सकती है और न सद्गति प्राप्त कर सकती है। अपनी आत्मा के प्रति, मस्तिष्क के प्रति, शरीर के प्रति, कुटुंब के प्रति, समाज के प्रति राष्ट्र के प्रति एवं समस्त संसार के प्रति मनुष्य के कुछ कर्तव्य, उत्तरदायित्व एवं धर्म होते हैं। असंयमी व्यक्ति उन्हें जानते तक नहीं जो जानते है, उनमें से असंख्य उन्हें जानते तक नहीं, जो जानते है,उनमें से असंख्य उन्हें पूरा नहीं करते, फलस्वरुप उन्हें वे दुःखद परिणाम भुगतने पड़ते जिन्हें नरक, बंधन आदिनामों से पुकारा जाता है। गायत्री शक्ति की धारणा से यह धर्म भावना जाग्रत होती है फलस्वरुप साधक के विचार कार्य और आयोजन धर्म केन्द्र के चारों ओर परिभ्रमण करने लगते हैं और वह ऐसा धर्मात्मा बनता जाता है, जिसे सच्चा मनुष्य, देशभक्त, लोकसेवी, सभ्य नागरिक, कर्तव्यनिष्ठ एवं ईश्वरभक्त भी कह सकते हैं।

**(7) स्वास्थ्य**– उत्तम स्वास्थ्य मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है। कुछ अपवादों को छोड़कर आमतौर से प्रकृति माता सभी को स्वस्थ शरीर प्रदान करती हैं, किंतु लोग उसे मिथ्या आहार–बिहार के द्वारा बिगाड़ लेते हैं। यह बिगाड़ जब तक चलता रहता हैं,तब तक स्वास्थ्य में विकृतियाँ बनी ही रहती हैं। एक रोग गया, दूसरा आया, एक दवा बंद हुई, दूसरी आरंभ करनी पड़ी। यह क्रम तब तक नहीं टूट सकता, जब तक कि आहार–बिहार में प्राकृतिकता न आए, सतोगुण न बढ़े। गायत्री से सतोगुण बढ़ता है और जीवनक्रम में संयम एवं सुव्यवस्था का प्रमुख भाग रहने लगता है।

**(8) समृद्धि** – अनेक दोषों, पापों, कुटेबो व्यसनों में फँसे हुए व्यक्ति पूर्वसंचित समृद्धि को भी गँवाते हैं। बुरे स्वभाव, उलटे दृष्टिकोण, अस्थिर मस्तिष्क के कारण उनके लाभदायक कार्य भी हानिकारक सिद्ध होते हैं। उनके खर्च बहुत बढ़े हुए और निरर्थक होते हैं, तद्नुसार तामसिक वृत्ति के मनुष्य सच्चे अर्थो में कभी समृद्धिशाली नहीं बन सकते। किसी प्रकार नीति अनीति का विचार छोड़कर वे पैसे जमा कर भी लें तो वह पैसा उनके लिए चिंता, अशांति , क्लेश और दोष–दुर्गुणों की वृद्धि करने वाला, कष्टकारक ही सिद्ध होता है इसके विपरीत जिनके अंदर गायत्री तत्व की अधिकता है, उनका मानसिक संतुलन ठीक रहने से कार्यो में दूरदर्शिता की मात्रा अधिक रहती है फलस्वरुप वे संपन्नता की ओर बढ़ते हैं। मितव्ययता, ईमानदारी और परिश्रमशीलता के कारण वे गरीब नहीं रह पाते। अनीति से धनवान हुए लोगों की तरह वे अमीर नहीं बन पाएँ, तो भी उनकी थोड़ी –सी पूँजी सदुपयोग में आकर असीम आनंददायक बनती है।

**(9) सहयोग**– बुरे लोगों से वे लोग भी भीतर ही भीतर डरते और घृणा करते रहते हैं, जो कारणवश उनसे मित्रता रखते हैं। उसके विपरीत खरे, ईमानदार सद्गुणी, प्रसन्नचित, स्थिरमति, मधुरभाषी, सेवाभावी, सुखी, प्रसन्न व्यक्ति की ओर सबका मन आकर्षित होता है। ध्वनि की प्रतिध्वनि की भाँति प्रेम का प्रत्युत्तर प्रेम से सेवा का सेवा से, सहयोग का सहयोग से मिलता है। इस प्रकार गायत्री साधक को अनेक सच्चे मित्र और सच्चे सहयोगी मिल जाते हैं। उन्नति के अवसर सहयोगियों की सहायता से ही मिला करते हैं। जिसे अधिक लोगों का सहयोग प्राप्त हैं, उसको न केवल सांसारिक वरन् मानसिक सुख–शांति की भी उपलब्धि होती है।

ये नौ निधियाँ यज्ञोपवीत के नौ तार हैं। गायत्री की शरण में जाना, द्विजत्व को प्राप्त करना हैं। जो द्विज इस नौ तार के यज्ञोपवीत को धारण करता है, उसे उनसे संबंधित ,उन नौ गुणो की प्रतिध्वनि स्वरुप ये नौ निधियाँ प्राप्त होती हैं। ये ही जीवन का सर्वोत्तम लाभ है। यह जितने अंशों में मनुष्य को प्राप्त होती जाती हैं, उतने ही अंशों मे साधक अपने को स्वर्गीय सुखों से संपन्न अनुभव करने लगता है।

**मो0–09927086289**

ooo

# सब एक हैं, सब अद्वैत हैं'

❑ डॉ0 ज्ञान पाठक

प्राचीन काल से लेकर अब तक मानव सभ्यता की उम्मीदें युवा वर्ग पर ही बनी रही हैं। यही कारण है कि सुकरात से लेकर आज के आधुनिक सामान्य जन तक युवाओं को ऐसी दिशा में ले जाने के प्रयास करते रहे हैं जिस रास्ते पर चलकर परिवार, समाज, देश और विश्व का कल्याण संभव हो सके। शारीरिक रुप से अधिक क्षमतावान होने के कारण बाल, वृद्ध, बीमार या अधेड़, सभी उनकी ओर ही आशा भरी निगाहों से देखते है। इन युवाओं के मन मस्तिष्क पर अधिक उम्र के लोग, विशेषकर शिक्षाविद और सामाजशास्त्री अपने अपने तरह से नक्काशी करने में लगे रहते हैं। कुछ लोग तो अपनी सीमाओं का अतिक्रमण कर बोल देते हैं कि आज का युवा वर्ग भटक गया है। वे भूल जाते हैं कि आज भी सारे कार्य जिनमें शारीरिक क्षमता की आवश्यकता होती है। वे युवा वर्ग ही कर रहे हैं – चाहे वह विनिर्माण या अवसंरचना का क्षेत्र हो या सीमा की सुरक्षा का, आपातकालीन राहत कार्य हो या अपनी जान पर खेलकर लोगों को बचाने का। हाँ, युवा वर्ग की एक बड़ी संख्या भटकी हुई है, जिनके मूल में उनके मन–मस्तिष्क में की गयी हानिकारक नक्काशियां ही हैं जिनकी जिम्मेदारी भी उन्हें ही स्वीकार करनी चाहिए जिन्होंने ऐसी शिक्षा दी और अपने हानिकारक प्रभाव छोड़ें। परन्तु यह समय दोषारोपण के खेल का नहीं, बल्कि कुछ कर गुजरने का है, वह भी युवाओं द्वारा स्वयं।

अनेक युवा सही दिशा में पहले से ही सतत् प्रयत्नशील हैं। अनेक युवा समयानुसार गलत काम भी कर लेते हैं और सही भी। परन्तु अनेक युवा ऐसे हैं जो ज्ञान के अभाव में गलत रास्ते पर ही चलते हैं तथा अपना विनाश स्वयं सुनिश्चित कर लेते हैं। जो युवा सही दिशा में चल रहे हैं वे भी अनेक बार विभ्रम के शिकार होकर अपना विनाश स्वयं कर लेते हैं। ऐसी स्थित सब पर लागू होती है। महाभारत काल में अर्जुन को भी इसका भ्रम हो गया था परन्तु उन्होंने युद्ध के मैदान में ही कृष्ण से पूछ लिया – हे कृष्ण, जिस ज्ञान की बात आप कर रहे हैं वह प्राप्त हो भी जाये तो उसके बाद क्या होगा? कृष्ण ने उत्तर दिया–जब ज्ञान हो जाता है तो व्यक्ति स्वयं अपना विनाश नहीं करता।

युवा वर्ग स्वयं में देखें कि क्या वह स्वयं अपना विनाश कर रहा है? यदि इसका उत्तर हां में है तो वह तत्काल इस पर लगाम कस दे। परन्तु जिन

युवाओ को यह नहीं मालूम कि वह स्वयं अपना विनाश कर रहे हैं या नहीं, उन्हें श्रीमद्भगवत गीता की इस उक्ति को ध्यान में रखना चाहिए कि कुछ कार्य प्रारम्भ में अमृत के समान होते हैं परन्तु परिणाम में विष के समान होते हैं और कुछ कार्य वैसे होते हैं जो प्रारम्भ में विष के समान लगते हैं परन्तु परिणाम में अमृत के समान होते हैं। अर्थात् जिसका परिणाम दुःखदायी होता है वे सभी कार्य विनाशकारी हैं, जिन्हें करते हुए व्यक्ति स्वयं का नाश कर लेता है। यदि फिर भी कोई संशय रह जाये जो युवा को किसी ज्ञानवान व्यक्ति से पूछना चाहिए कि वह जो कार्य कर रहा है वह स्वयं का नाश करने वाला है या नहीं । यदि विद्वानों के बीच उस मुद्दे पर मतभेद हो तो उसे किसी सात्विक व्यक्ति की खोज करनी चाहिए क्योंकि उसका स्वाभाविक रुझान ही उस विकट समय में सही दिशा होती है। युवाओं में अनेक युवा वैसे हैं जो किन्हीं कारणो से शारीरिक रुप से कमजोर होते हैं। ऐसे युवाओ में से कुछ के लिए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि – 'पहले जाकर फुटबॉल खेलो' उनका आशय यह था कि शारीरिक रुप से स्वस्थ तथा शक्तिशाली युवा ही कुछ कर सकता है।

वास्तव में स्वास्थ्य जीवन के विकास की पहली शर्त है। विख्यात प्राचीन वैद्य महर्षि चरक ने तो कहा था कि यदि व्यक्ति स्वस्थ नही है तो वह जीवन के चारों पुरुषार्थो – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से किसी को भी हासिल नहीं कर सकता। उपनिषदों में अनेक स्थानों पर स्वास्थ्य को ब्रह्म तक कहा गया। स्वामी विवेकानंद इस तथ्य के महत्व को जानते थे, इसलिए उन्होंने भी स्वास्थ्य को महत्वपूर्ण माना तथा पहले स्वस्थ बनने की सलाह दी।

जो युवा इंद्रियों की दासता के कारण अपने ही स्वास्थ्य का नाश कर अपना नाश कर लेते हैं उनके प्रति हमारे अग्रजों की चिंता उचित है। जिन सुखों की तलाश में व्यसनों का सहारा लेकर क्षणिक सुख प्राप्त करने का उपक्रम करने वाले युवा अंततः काम और अर्थ का सुख भी भोग पाने की स्थिति में नहीं रह जाते, धर्म तथा मोक्ष की तो बात ही दूर। जो युवा इन तथ्यों को जानते हैं परन्तु वे इनके अनुकूल आचरण नहीं कर पाते उनके लिए भी स्वामी विवेकानंद के दिशा–निर्देशन स्पष्ट हैं। इन सब पर विजय पाने के लिए वह कर्मयोग, ज्ञान योग, तथा ध्यान योग का अभ्यास करने की सलाह देते हैं। अपने प्रवचनों में वह बार–बार कहते हैं – उठो, जागो, और तब तक चलते रहो जब तक अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच जाओ। परन्तु वह जागना किसे कहते हैं? यदि जाग जाये तो फिर उठकर किस प्रकार चलना होता है ताकि वांछित लक्ष्य हासिल किया जा सके?

स्वामी विवेकानंद के सम्पूर्ण प्रवचनों से एक ही बात स्पष्ट होती है कि जब मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है कि संसार में जो भी अस्तित्व है वह अनेक नहीं बल्कि एक ही है। इसे ही वह अद्वैत कहते हैं अर्थात यदि आप किसी का अहित करते हैं तो वास्तव में आप स्वयं का अहित करते हैं क्योंकि दूसरा तो कोई है ही नहीं उनके सम्पूर्ण ज्ञान का सार ही यही है जिसे व्यक्ति स्वयं ही देख सकता है। आप समस्त जीव जन्तुओं, वनस्पतियों आदि जीवगत को नष्ट कर किस प्रकार अपने ही नाश का इंतजाम कर रहे हैं और किस प्रकार स्वयं को संकट में डालते रहे हैं यह जगजाहिर है। इस तरह स्वयं को नष्ट नहीं करने का भाव उत्पन्न होना ही मनुष्य का जागना है परन्तु जागने मात्र से काम नहीं चल सकता। उसके लिए कर्म आवश्यक है। कर्म के बिना तो व्यक्ति का शरीर ठीक ढंग से नहीं चल सकता। इसलिए सभी विद्वान कर्म पर ही सर्वाधिक जोर डालते हैं परन्तु कर्म क्या है इस पर विद्वानों में भी संदेह उत्पन्न हो जाता है। इसे स्पष्ट करते हुए स्वयं व्यास के सम्पूर्ण वांडमय में दो बातें लिखी गयी हैं– 'परोपकाराय पुण्याय, पापाय परपीड़नम्।'अर्थात् जिस कर्म से किसी का उपकार होता हो वह पुण्य है, तथा किसी की पीड़ा होती हो वह पाप हैं, इसीलिए किसी को पीड़ित कर सुख प्राप्त करने के लिए किये गये सभी कार्य गलत हैं यहां कही कोई संदेह नहीं। स्वामी विवेकानन्द के अद्वैत के अनुसार चूंकि दूसरा कोई हैं ही नहीं, इसलिए किसी को भी पीड़ित करना स्वयं की ही पीड़ित करना है।

कर्म के मामले में श्रीमद्भगवद् गीता का निर्देश है– ज्ञानदग्ध कुरु कर्माणि। अर्थात् अपने समस्त कर्मो को ज्ञान की अग्नि से शुद्ध करो। फिर इस प्रकार शुद्ध किये गये कर्मो के बारे में कहा गया –योगस्थ कुरु कर्माणि, अर्थात अपने कर्मो को योगस्थ कर दो। कर्मो को योगस्थ कैसे किया जाता है, शान्ति पाठ के समय कहा जाता है– ऊं सह नौ भवतु, सह नौ भुनक्तु सह वीर्य करवावहै.. ...। अर्थात् मस्तिष्क तथा शरीर दोनों का तालमेल और सह अस्तित्व बना रहे, दोनों एक साथ आनंद का लाभ उठाये और दोनो उसे प्राप्त करने के लिए एक साथ तालमेल से कर्म में प्रवृत हो। मस्तिष्क तथा शरीर का योग यही है जो अलग–अलग होते हुए भी मानव शरीर के रुप में एक है। उन लोगों का बुरा हाल देखिये जिनके शरीर और मस्तिष्क योगस्थ नहीं हैं। शरीर की दिशा अलग और मन की दिशा अलग होने की पीड़ा से कौन रु–ब–रु नहीं हुआ है। दोनों का योगस्थ होना आवश्यक है। उसी प्रकार हमारे कर्मों का समाज के साथ योगस्थ होना आवश्यक है। क्योंकि सभी एक हैं, जिनमें एक मात्र जीवब्रह्म का वास है। इसलिए किसी का छोटा या बड़ा होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

इसलिए, जाति धर्म या किसी भी अन्य प्रकार से किए जाने वाला भेदभाव का कोई अर्थ ही नहीं है। स्वामी विवेकानंद ने भेदभाव पर दिये गये अपने प्रवचन में इसे स्पष्ट किया था । यह समझ लेना चाहिए कि सारे कर्म योगस्थ कर दिये जायें ताकि पर्यावरण, पारिस्थितिकी, या समाज के साथ टकराव नहीं बल्कि तालमेल बना रहे। इसी में सुख है क्योंकि जो कुछ है वह अद्वैत ही तो है।

स्वामी जी जब कर्म पर जोर देते हैं तो हमेशा यही प्रतिध्वनित होता है कि कर्म ही यज्ञ है, वही कर्म यज्ञ है और वही यज्ञ कर्म। गीता में भी स्पष्ट कहा गया है– यज्ञ कर्म समुद्रभवम् अर्थात् यज्ञ कर्म से उत्पन्न होते हैं, जिसे इसका ज्ञान है,वही ज्ञानी है वह यदि डाक्टरी पढ़ता है तो इसलिए नहीं कि वह अत्यधिक धन कमायें, बल्कि इसलिए कि बीमार लोगों की सर्वोत्तम सेवा कर सके। इस तरह वह एक ही साथ अपने कर्म का फल भी पाता है, धन भी और यज्ञ का फल भी । उसकी पढ़ाई ही उसके लिए यज्ञ बन जाता है। परन्तु जो केवल धन के लिए पढ़ता है उसे यज्ञ का फल प्राप्त नहीं होता, इसलिए कर्मो को यज्ञ की तरह करने के दोहरे लाभ होते हैं, तथा धन तो कर्म का ही सह–उत्पाद है।

सभी ओर इस बात के प्रमाण बिखरे पड़े हैं कि इस संसार में कर्म का फल अवश्य ही मिलता है। जैसे हम खाना खाते तो पेट अवश्य ही भरता है। जो व्यक्ति पेट भरने की चिंता में डूबा रहता है उसे खाने का आनन्द भी नहीं मिलता। फल तो सुनिश्चित है। पेट भरेगा ही। आप खाना तो खा लें। अर्थात् फल की चिंता में डूबकर कर्म में केन्द्रित ध्यान को अन्यत्र लगाने से तो भटकाव ही होगा। इसलिए युवा शत–प्रतिशत ध्यान अपने कर्म पर ही लगायें। वाह्य वस्तुओं और व्यक्तियों के आकर्षण या बहकाये में भटकें नहीं। पर पीड़ा से सुख प्राप्त नहीं करने तथा कर्मों को ज्ञान की अग्नि में तपाकर उन्हें योगस्थ करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं हैं– स्वयं के लिए भी और जिसे आप अन्य समझते हों उनके लिए भी। परन्तु ध्यान स्वामी जी के अद्वैत पर ध्यान रखें– यहां कुछ भी अन्य या दो नहीं हैं। सब एक हैं, सब अद्वैत हैं।

**फोन : 011–26231999**

ooo

# संस्कार-सरिता : यमुना

❑ डा0 हरिप्रसाद दीक्षित

आदिकाल से ही मानव सभ्यता और संस्कृति के विकसित एवं अस्तित्वमती होने में नदियों का अमूल्य योगदान रहा है। भारतीय संस्कृति नदियों के किनारे ही पल्लवित एवं पुष्पित हुई। प्राचीनकाल में भारतीय ऋषियों ने नदियों के किनारे आश्रमों में रहकर आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया। प्रमुख ऐतिहासिक नगर भी पवित्र नदियों के किनारे ही बसाये गये, जिनका न केवल धार्मिक तथा सांस्कृतिक महत्व था अपितु वे व्यापारिक एवं सामाजिक चेतना के प्रमुख केन्द्र भी रहे। प्राचीनकाल में आवागमन भी नदियों के माध्यम से होता था। वेदों, पुराणों एवं धार्मिक ग्रन्थों में नदियों के महत्व को विषेश स्थान दिया गया है। उन्हें दैविक शक्तिसम्पन्न तथा राष्ट्र की प्राणदायिनी शक्ति माना गया है। वैदिक एवं पौराणिक आख्यानों से विदित होता है कि आदिकाल से ही मानव का सम्बन्ध नदियों से रहा है। उन्होंने अपनी दैवी शक्तियों के द्वारा मानव का उपकार तो किया ही, साथ ही, एक ममतामयी माँ की तरह मानव की भौतिक आकांक्षाओं की पूर्ति भी की। मानव द्वारा और्ध्वदेहिक संस्कार, शुद्धि संस्कार, स्नान संस्कार, श्राद्ध पिण्डदान आदि धार्मिक कृत्य गंगा, यमुना, नर्मदा, क्षिप्रा आदि पवित्र नदियों के किनारे पर सम्पन्न होते रहे हैं। आज भी पवित्र नदियाँ मानवीय आस्था, श्रद्धा एवं विश्वास का केन्द्र बनी हुई हैं। प्रस्तुत आलेख में 'यमुना' के धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक महत्व को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

'यम्–उपरमे' धातु से 'अजियमिशीडभ्यश्च' सूत्र से ऊनन् प्रत्यय करने पर यमुना शब्द निष्पन्न होता है। यच्छति विरमति गंगायामिति यमुना नही विशेषः। सा तु हिमालय–दक्षिणदेशात् 'यमुनोत्री' नामक स्थानान्निर्गत्य प्रयागे गड.ायां मिलति। शब्दकल्पद्रुम में यमुना के तेरह पर्यायवाची शब्द गिनाये गये हैं। वहाँ यमुना को पूर्व दिशा की ओर प्रवाहित होने वाली नदियों में परिगणित किया गया है–

गंगा सरस्वती शोण यमुना सरयूः सची। वेणा इरावती नीला उत्तरात् पूर्ववाहिनी।

अमरकोश में यमुना के चार नाम मिलते हैं– कालिन्दी सूर्यतनया यमुना शमनस्वसा।

## वेदों में यमुना

सर्वत्र फैले हुए युद्ध में जिस इन्द्र ने भेद करनेवाले शत्रु का वध किया, उस इन्द्र का रक्षण यमुना और तृत्सुओं ने किया–

आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वदाता मुषायत्।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभुरश्व्यानि।।

ऋषि श्यावाश्व दान में प्राप्त गौओं को यमुना में स्नान कराते थे– ''सप्त में सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः। यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं भृजे निराधो अश्व्यं मृजे।। ऋग्वेद के दशम मण्डल में अनेक  नदियों के साथ यमुना का भी उल्लेख किया गया है–

इमं में गडे. यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परूष्णया।
आसिकन्या मरूद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्मा सुषोमया।।

**यमुना का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व**

यमुना में स्नान, दान, तर्पण, श्राद्ध, पिण्डदान आदि धार्मिक अनुष्ठानों के सम्पादन का पुराणों में विशेष महत्व बताया गया है। यमुना को देवता के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है तथा तीर्थरूप में उसकी प्रतिष्ठा को गरिमा प्रदान की गयी है।

**यमुना में आचमन एवं स्नान का फल**

नित्यकर्मों के सम्पादन के लिए नदी में स्नान करना सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। नदी के अभाव में नद, तड़ाग, देवालयों की बावड़ी, पर्वतीय झरने एवं कुएँ के जल से भी स्नान का विधान है–

नदीनदतड.ागेषु देवखात जलेषु च।
नित्यक्रियार्थ स्नायीत गिरिप्रस्त्रवणेषु च।
कूपेषूद्धृततोयेन स्नानं कुर्वीत वा भुवि।
गृहेषूद्धृततोयेन ह्यथवा भुव्यसम्भवे।

यमुना में स्नान, आचमन और यमुना का नाम–कीर्तन करने से महान पुण्य की प्राप्ति होती है तथा दर्शन करने से मनुष्य को अपने जीवन में कल्याणकारी अवसर देखने को मिलते हैं। यमुना में स्नान और जलपान करके मनुष्य अपने सात कुलों को पवित्र बना देता है, परन्तु जो यमुना तट पर अपने प्राणों का त्याग करता है वह परमगति प्राप्त करता है–

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनायां युधिष्ठिर।
कीर्तनाल्लभते पुण्यं दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति।
अवगाह्याथ पीत्वा च पुनात्यासप्तमं कुलम्।
प्राणांस्त्यजति यस्तत्र स याति परमां गतिम्।।
यमुनासलिलस्नातः पुरुषो मुनिसत्तम।
ज्येष्ठामूले सिते पक्षे द्वादश्यां समुपोषितः।
समभ्यर्च्याच्युतं सम्यड मथुरायां समाहितः।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य प्राप्नोत्यविकलं फलम।।

यमुना जल में सकाम भाव अथवा निष्काम भाव से जो व्यक्ति स्नान करता है,

वह इस लोक और परलोक में कष्टों का अनुभव नहीं करता। जिस प्रकार इच्छा मात्र से कामधेनु तथा विचार करने पर चिन्तामणि अभीष्ट वस्तु प्रदान करती है, उसी तरह यमुना स्नान भी सभी कामनाएँ पूर्ण करता है।

अकामो वा सकामो वा यामुने सलिले नृप।
इहामुत्र च दुःखानि मज्जनान्नैव पश्यति।
कामधेनुर्यथाकामं चिन्तामणिर्विचिन्तितम्।
ददाति यमुनास्नानं तद्वत्सर्व मनोरथम्।।

व्रत, दान और तप से श्रीहरि उस प्रकार प्रसन्न नहीं होते जिस प्रकार कालिन्दी नीर में स्नान करने से प्रसन्न होते हैं। मनुष्य के उपपातक तथा महापातक भी इस पवित्र सरिता में स्नान मात्र से भस्मीभूत हो जाते हैं।

**यमुना में दान का फल**

सतयुग में तप, त्रेता में श्रेष्ठ ज्ञान, द्वापर में यजन तथा कलियुग में दान से जो फल प्राप्त होता है वह यमुना जल में कभी भी स्नान करने से प्राप्त हो जाता है–

कृते तपः परं ज्ञानं त्रेतायां यजनं तथा।
द्वापरे च कलौ दानं कालिन्दी सर्वदा शुभा।।

पद्मपुराण के अनुसार इस सरिता में दान एवं हवन करोड़ गुना फल देता है–

कोटितीर्थसहस्त्रैस्तु सेवितैः किं प्रयोजनम्।
तत्रदानं च होमश्च सर्व कोटिगुणं भवेत्।।

**यमुना में श्राद्ध एवं पिण्डदान का फल**

पितर अपने वंशजों से अपेक्षा करते हैं कि हम लोगों के वंश में कोई ऐसा व्यक्ति जन्म ले जो अधिक एवं शीतल जलवाली नदियों में जाकर हम लोगों को कभी श्रद्धापूर्वक जलांजलि दे। वे चिंतित रहते हैं– क्या हमारे कुल में कोई ऐसा व्यक्ति जन्म लेगा जो दूध, फल, खाद्य सामग्रियों से अथवा तिल सहित जल से नित्य श्राद्ध करेगा?

अपिस्यात् स कुलेऽस्माकंयोनो दद्याज्जलाञलिम्।
नदीषु बहुतोयासु शीतलासु विशेषतः।
अपिस्यात् स कुलेऽस्माकंयः श्राद्धं नित्यमाचरेत्।
पयोमूलफलैर्भक्ष्यैस्तिलतोयेन वा पुनः।।

पुराणों के अनुसार वंशजों द्वारा यमुना तट पर पिण्डदान करने से उन्नति लाभ प्राप्त किये हुए पितरों की समृद्धि देखकर कौन नहीं स्पृहा करने लगता–

कच्चिदस्मत्कुले जातः कालिन्दी सलिलाप्लुतः।

अर्चयिष्यति गोविन्दं मथुरायामुपोषितः।
ज्येष्ठामूले सिते पक्षे समभ्यर्च्य जनार्दनम्।
धन्यानां कुलजः पिण्डदान् यमुनायां प्रदास्यति।।

**गंगा–यमुना की तुलना**

गंगा और यमुना ये दोनों समान फल देने वाली बतलायी गयी हैं। केवल ज्येष्ठ होने के कारण गंगा की सर्वत्र पूजा होती है–

गंगा च यमुना चैव उभे तुल्यफले स्मृते।
केवलं ज्येष्ठ भावेन गड.ा सर्वत्र पूज्यते।।

तीनों लोकों में विख्यात सूर्यपुत्री यमुना प्रयाग के संगम–स्थल पर अपना स्वत्व विसर्जित करने के कारण विशेष लोक पावनी ख्याति प्राप्त कर लेती हैं। जहाँ से गंगा का प्रादुर्भाव हुआ है, वहीं से यमुना भी उद्भूत हुई है। ये हजारों मील दूर से भी नाम लेने से सभी पापों का नाश करती है–

तपनस्यसुता देवी त्रिषुलोकेषु विश्रुता।
समाख्याता महाभागा यमुना तत्र निम्नगा।।
येनैव निःसृता गड.ा तेनैवयमुनाऽऽगता।
योजनानां सहस्त्रेषु कीर्तनात् पापनाशिनी।।

**प्रयागस्थित यमुना तीर्थ**

प्रयाग में यमुना के दक्षिण तट पर सुप्रसिद्ध अग्नितीर्थ है और उससे पश्चिम दिशा में धर्मराज का तीर्थ है, जो नरक नाम से प्रसिद्ध है। ऐसी मान्यता है कि स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोक चले जाते हैं तथा जो लोग वहाँ प्राण त्यागते हैं वे मोक्ष प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार यमुना के दक्षिण तट पर हजारों तीर्थ हैं–

अग्नितीर्थमति ख्यातं यमुनादक्षिणे तटे।
पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थ तु नरकं स्मृतम्।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतासतेऽपुनर्भवाः।
एवं तीर्थसहस्त्राणि यमुना दक्षिणे तटे।।

यमुना के उत्तर तट पर सूर्य का नीरूजक नाम तीर्थ है, जहाँ देवगण तथा अन्य विद्वज्जन त्रिकाल सन्ध्योपासना में संलग्न रहते हैं। इसी प्रकार और भी बहुत–से तीर्थ हैं जो समस्त पापों का नाश करते हैं। यमुना के उत्तर और प्रयाग के दक्षिण में ऋण प्रमोचन नामक एक अद्भुत तीर्थ है, वहाँ एक रात्रि विश्राम करके जो स्नान करता है वह सदा के लिए ऋण मुक्त होकर स्वर्ग प्राप्त करता है–

उत्तरे यमुनातीरे प्रयागस्य च दक्षिणे।

ऋण प्रमोचनं नाम तीर्थन्तु परमं स्मृतम्।
एकरात्रोषितः स्नात्वा ऋणात्तत्रप्रमुच्यते।
स्वर्गलोकमवाप्नोति अनृणश्च सदा भवेत्।।

## मथुरा के यमुना तीर्थ

मथुरा में यमुना तीर्थों मे स्नान एवं प्राणत्याग के भिन्न–भिन्न फल बताये गये हैं। यमुनेश्वर में विष्णुलोक, धारापतन में नाकलोक, नागतीर्थ में मो़क्ष, घण्टाभरण में सूर्यलोक, सोमतीर्थ में सोमलोक, दशाश्वमेध में स्वर्ग, मानस में स्वर्गलोक और विध्नराज तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य के समस्त कार्य निर्विघ्न होते हैं। जो मनुष्य मथुरा में तीन दिन उपवास करते हुए यमुना में स्नान कर लेता है वह ब्रह्महत्या जैसे महान् पाप से भी मुक्त हो जाता है। इन तीर्थों के अतिरिक्त करोडों पवित्र तीर्थ यमुना तट पर स्थित हैं, जहाँ स्नान मात्र से व्यक्ति को अनेक गौओं के दान का फल प्राप्त होता है–

तटः परे कोटितीर्थं पवित्रं परमं स्मृतम्। तत्रवै स्नानमात्रेण गवां कोटिफलं लभेत्।।

यम द्वितीया को यमुना स्नान से यमलोक की यातनाओं से मुक्ति मिल जाती है–

ऊर्जेशुक्लद्वितीयायामपराहनऽर्ययेद्यमम् स्नानं कृत्वा
भानुजायां यमलोकं न पश्यति।।

## संस्कृत महाकाव्यों में यमुना माहात्म्य

मर्यादा पुरूषोत्तम राम सीता के साथ वनवास के लिए प्रस्थान करते समय जब यमुना पार करते हैं उस समय सीता बड़े विनम्र भाव से यमुना से प्रार्थना करती हैं– हे देवि! इस बेड़े द्वारा मै आपके पार जा रही हूँ। आपकी कृपा से हम लोग सकुशल पार हो जायें अपनी वनवास प्रतिज्ञा पूर्ण कर मेरे पति के अयोध्या लौटने पर मैं आपके किनारे एक हजार गायों का दान करूंगी और सैकड़ो देवदुर्लभ पदार्थ अर्पित कर पूजा करूंगी।

कालिन्दीमध्यमायाता सीता त्वेनामवन्दत।
स्वस्ति देवि तरामि त्वां पारयेन्मे पतिर्व्रतम्।।
यक्ष्ये त्वां गोसहत्रेण सुराघटशतेन च। स्वस्ति प्रत्यागते रामे
पुरोमिक्ष्वाकुपालिताम्।।

यमूना सूर्यपुत्री होकर भी शीतल, यम की बहिन होकर भी जीवन प्रद और कृष्णवर्णा होकर पापों का प्रक्षालन करनेवाली भारतीय वसुधा की अप्रतिम वात्सल्य धारा और पावन संस्कार–सरिता है।

**या धर्मभानोस्तनयापि शीतलैः स्वसा यमस्यापि जनस्य जीवनैः।**
**कृष्णापि शुद्धेरिधिकं विधातृभिविहन्तुमंहांसि जलैः पटोयसो।।**

 OOO

# झालावाड़ की चित्रांकन परंपरा

❑ ललित शर्मा

रेत कितनी संवदेनशील हो सकती है और रंगों तथा रेखाओं को समन्वित कर उन्हें चित्रांकन की एक अनूठी और जीवंत यात्रा का साक्षी भी बना सकती है, इस तथ्य को राजस्थान की भूमि ने सिद्ध किया है। इस भूमि ने न केवल भारतीय चित्रकला के इतिहास में अनूठे अध्याय रचे अपितु समूचे विश्व मेंअपनी कलात्मकता के विलक्षण प्रतिमानों को भी स्थापित किया है। इसी राजस्थान के हाड़ौती अंचल में मध्य तथा उत्तर मध्यकाल में बूंदी और कोटा में चित्रकला की शैलियों का विकास हुआ तथा इन्हीं शैलियों की एक उपशैली के रुप में झालावाड़ कलम की चित्रांकन परंपरा जिसकी अपनी विशेषताएं रही, भी पल्लवित हुई, परंतु दुर्भाग्यवश राजस्थान की संस्कृति में उसका विश्लेषण न होने से वह अब तक अछूती व अचर्चित ही रही। झालावाड़ के शासक जहां एक ओर अपने शौर्य और सद्कार्यो के कारण विख्यात रहे वहीं दूसरी ओर वे कलाप्रेमी भी रहे। यद्यपि बूंदी और कोटा की चित्रकला की अपनी विशेषताएं हैं किंतु झालावाड़ कलम की चित्रांकन परंपरा की विशिष्टता यहां के गढ़ भवन, पुरा संग्रहालय, कोठी पृथ्वी विलास,श्रीनाथजी की हवेली तथा व्यापारिक फर्म सेठ विनोदीराम–बालचंद की विशाल हवेली बिनोद भवन झालरापाटन में आज भी है, वह अपने–आप में अपूर्व है तथा उसका अपना निजस्व है। बूंदी कलम जहां नारी सौंदर्य अंकन के लिए प्रख्यात मानी जाती है वहीं कोटा कलम शिकार दृश्यों के बहुतायत के लिए जानी जाती है। परंतु इन दोनों का समन्वयऔर परिष्कार यदि स्पष्ट रुप से देखना है तो वह झालावाड़ कलम में दिखाई देता है जो 19वीं सदी के आरंभिक दशकों की पनपी चित्रशैली के उत्कर्ष का राजस्थान में आख्यान करती है।

1838 ई0 में स्थापित झालवाड़ राज्य का गढ़ पैलेस यहां के शासक महाराजा मदनसिंह झाला के काल में सन् 1840 ई0 से निर्मित होता हुआ लगभग 1872 ई0 में पूर्ण हुआ। इस राज्य में सन् 1899 ई0 से 1929 ई0 तक के समय में कलाप्रिय एवं विद्वान नरेश महाराजा भवानी सिंह का शासन रहा। उन्हीं के समय वहां भवानी नाट्यशाला पुरातत्व संग्रहालय आदि सांस्कृतिक धरोहरों का निर्माण हुआ, वहीं चित्रांकन परंपरा का भी तीव्र गति से क्रमिक विकास हुआ। उन्होंने इस कला परंपरा को अपनी रुचि के कारण पुरजोर संरक्षण दिया उन्होंने नाथद्वारा शैली के प्रख्यात चित्रकार पं0 घासीराम शर्मा पं0 ओंकारलाल शर्मा, पं0 प्रेमचंद्र शर्मा को झालावाड़ में बुलाकर बसाया और उनसे गढ़ भवन के कक्षों तथा कोठी व हवेलियों की भित्तियों पर स्वर्ण मिश्रित रंगों से ऐसे सुंदर, मनमोहक और मुंह बोलते चित्र

बनवाए, जिन्हें देखकर आज भी सात समुंदर पार के पर्यटक तथा कला समीक्षक दांतो तले अंगुली दबा लेते हैं।

गढ़ भवन के कंवरपदा महल तथा पूर्व पुलिस अधीक्षक कार्यालय के कक्षों में बने ये भित्ति चित्र विविध विषयों के हैं। इनमें विशेष रुप से जो आवक्ष तथा आदमकद व्यक्ति चित्र है, वे झालावाड़ राज्य के राजाओं सहित तत्कालीन राजपूताना की अन्य रियासतों के पूर्व व उस समय के शासकों के हैं । ये चित्र कांच पर जड़े हुए हैं, जो अंदर की ओर बनाए गए हैं, फिर उन्हें यहां की भित्तियों पर ठोस तरीके से चिपकाया भी गया है। इन कक्षों की छतें पूरी तरह से बेलबूटों तथा सुंदर अलंकरणो, गमलों से चित्रित हैं। इनमें सभी चित्रों को चित्रित करते समय चित्रकार ने उस युग के वातावरण, अलंकरण और शाही वेशभूषा को पूरी बारीकी और मनोयोग से ऊकेरा है। इन चित्रों की एक बड़ी विशेषता यह है कि इनमें राजपूताना व उससे जुड़े विभिन्न राज्यों में पहनने वाली शाही पगड़ियों को ऊकेरा गया है। इनके अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि पहाड़ी कलम से चंबा और गुलेर तथा मालवा के राधोगढ़ की चित्रांकन परंपरा में जो पगड़िया ऊकेरी गई उनसे भी झालावाड़ के चित्रकार प्रभावित इसके साथ ही विभिन्न भंगिमाएं भी यहां के चित्रों में दिखाई देती है, जैसे कहीं शासक अकेले ही हुक्का पी रहे हैं तो कहीं हुक्का पीते वृद्ध शासक के समक्ष दरबारी बैठे हैं। हाथ में तलवार लिए शासकों के कई चित्र हैं। एक चित्र में राजा अपनी रानी से गंभीर विचार–विमर्श में निमग्न दिखाई देते हैं। एक आदम कद शबीह में झालावाड़ के युवा शासक झाला जालिमसिंह (द्वितीय) को पारदर्शक व झीने वस्त्र का लंबा कुर्ता पहने हुए इतने जीवंत भाव से चि्त्रित किया गया है कि निष्णांत कलाविद् भी उस कुर्ते को वास्तविक मान छूने की भूल कर बैठते हैं इन चित्रों के ऊपर एक विशिष्ठ चित्र झालावाड़ के शाही इंद्र विमान की सवारी का बड़ी सुंदरता लिए है इसमें शाही इंद्र विमान को दो विशाल और सफेद हाथी खींच रहे हैं, जिनके आगे –पीछे अस्त्र–शस्त्रों से सज्जित फ़ौज पल्टन है तथा मार्ग किनारें स्थित मुख्यालय झालावाड़ (छावानी) की वैभवशाली हवेलियों, भंडारों, पथों एवं व्यवस्थित बाज़ारों के सुंदर तथा समृद्ध व्यापारिक प्रतिष्ठानों को उकेरा गया है। इन चित्रों से यह भी स्पष्ट होता है कि ये सारे चित्र अनेक चितेरों ने बनाए हैं। इनमें शाही आभूषणों को स्वर्ण रंगों से चित्रित किया गया है। लंदन के डा0 राकेश सिन्हा के संग्रह में एक मनोहारी चित्र का अंकन झालावाड़ कलम का है। इस चित्र में झाला जालिमसिंह ऊंटनी पर सवार हैं, जो दौड़ी चली जा रही है। इसकी गतिशीलता अद्‌भुत है।

यहां विभिन्न शासकों के चित्रों के ऊपर विभिन्न चित्रों में विभिन्न पौराणिक अवतारों के सुंदर चित्र भी बड़ी सुघड़ता के साथ बनाए गए हैं। इनमें पृथु अवतार, हंसा अवतार, मनु अवतार, रिषम अवतार सहित कलयुग में होने वाले कल्कि

अवतार तक का चित्रण कलाकार ने प्रसिद्ध तीर्थ बद्रीनाथ धाम के साथ बड़ी ही सुंदरता से किया है। इन चित्रों में कुछ प्रमुख चित्र कंपनी (ब्रिटिश) शैली के हैं जो अन्यत्र शैली में दिखाई नहीं देते। इनमें एक विशाल शाही जुलूस का सुंदर दृश्य है,, जिसमें सैनिकों की वेशभूषा व पतलून तथा उनके हाथों में बंदूकों का चित्रण कंपनी शैली का है, परंतु इस चित्र में जिन हाथियों का लोक लुभावन चित्रण है, वह कोटा कलम के हाथी चित्रों से भिन्न है। इन्हीं चित्रों में गजयुद्ध की व्यूह रचना का एक चित्रण बड़ा ही प्रभावी है। इसका माप 3x10सेंटीमीटर है। इस चित्र में जिन हाथियों के युद्ध और व्यूह रचना का सुंदर चित्रण है। गजयुद्ध का ऐसा भव्य चित्र राजस्थान की अन्य चित्रशैलियों में सर्वथा अनूठा है। वास्तव में इस चित्र में कहीं हाथी दौड़ रहे थे तो कहीं उन पर शिकारी सवार हैं। चित्रित पहाड़ियों पर गजों के झुंड व उन पर साधुओं की तपस्या व योगासन की मुद्राओं  के अद्‌भुत चित्र हैं। एक कक्ष में झालावाड़ के कल्पनाकार झाला जालिमसिंह की पूरी मंत्री परिषद तथा उनके प्रपौत्र महाराजा मदनसिंह व उनके पुत्र महाराजा पृथ्वीसिंह के चित्र बड़े भव्य तथा प्रभावी हैं। उनकी वेषभूषाओं में शाही झलक है। इन चित्रों के अनुसार इन चित्रों में शाही वेशभूषा तथा भाव—भंगिमाओं से झालावाड़ राज्य के निकट राज्य की चित्र शैली के पतन के चिन्ह साफ तौर दिखाई देते हैं।

भगवान श्रीनाथजी की विभिन्न राजसी भंगिमाओं का चित्रण नाथद्वारा शैली से प्रभावित हैं। झालावाड़ के शासक भगवान द्वारकाधीश के परमभक्त रहें, अतः उन्हें श्रीनाथजी तथा नवनीत प्रियालाल जी की सेवा करते हुए जिस प्रकार ऊकेरा गया है, वह आज भी जीवंत है। इन्हीं के साथ बल्लभ संप्रदाय की पुष्टिपूजा से सेवित बिठ्‌ठलनाथजी तथा अन्य गोस्वामियों के अंकन भी अत्यंत मनमोहक हैं। कवरपंदा महल के कक्ष के एक सुंदर कलात्मक मंदिरनुमा आलिये में श्रीनाथजी का पूर्ण श्रृंगार नयनभिराम वस्त्रों तथा मालाओं से चित्रित किया गया है। इसमें अनेक रंगो के साथ स्वर्ण रंग का भरपूर प्रयोग है। चित्र के पृष्ठ में चारों ओर गावों का सुंदर चित्रण हाशिएं का प्रभाव बढ़ता है। एक प्रभावी चित्र में झालरापाटन के द्वारकाधीश भगवान तथा 'नवनीति प्रियाजी का पूर्ण श्रृंगार' में ऊकेरा है,जिसमें नवनीत प्रियाजी के मूंछों से चित्रित किया है। इस चित्र के पृष्ठ आधार को स्वर्ण रंगों की मोर पंखियों से संवारा गया है। कृष्ण लीला के अंकन में उनकी मनोहारी बाललीला, कालिया दमन, छप्पन भोग,आदि के चित्र प्रमुख हैं इनमें एक अत्यंत मनभावन चित्र गीतगोविंद की भूमि के आधार पर रचा गया है। इसमें राधा—कृष्ण तथा राधा की सखी को चित्रित किया गया है। सखी मानिनी राधा को कृष्ण से मिलाने के लिए मना रही है।यह चित्र राजस्थान की चित्रांकन परंपरा में अत्यंत मनोहारी तथा जीवंतता लिए माना जा सकता है इसी क्रम में एक आलिये में श्रीकृष्ण का राधाशक्ति व सखियों के संग चंद्रमा की धवल चांदनी रात्रि के मध्य सधन बृजवन

में किए प्रसिद्ध महारास का अतिसुंदर चित्रांकन है, जिसे लगातार निहारते रहने पर भी आंखें नही थकती। ये चित्रांकन यर्थात शैली में टेम्परा प़्द्धति से बनाए गए हैं, जो यह दर्शाते हैं कि राज्य काल में झालावाड़ राज्य में कृष्ण भक्ति का बड़ा प्रभाव था। चित्र में महारास पर धवल चांदनी का चित्रण चित्रकारों ने पूरे मनोयोग से ऊकेरा है ।भारत के प्रख्यात कला समीक्षक नर्मदा प्रसाद उपाध्याय के व्यक्तिगत चित्र संग्रह में राम दरबार का एक अति सुंदर चित्र है। यह चित्र झालवाड़ चित्रांकन परंपरा का प्रमुख प्रतिनिधि चित्र माना जा सकता है जिसमें झालावाड़ कलम की सभी मौलिक विशेषताएं विद्यमान हैं। इसमें विशेष रुप से राम, सीता तथा हनुमान के अंकन इतने सधे हुए जीवंत और अनुपातिक हैं कि उन्हें देखकर लगता है जैसे किसी अत्यंत कुशल चित्रकार ने इसका इतना जीवंत चित्रण किया है।

इसी प्रकार रामलीला के चित्र में भित्तियों व आलियों में ऊकेरे गए हैं। इनमें से कुछ कांगड़ा की कला का प्रभाव है। बनवास के समय चट्टान पर बैठे राम–सीता का अंकन अत्यंत मोहक है, वहीं राम दरबार के अंकन में ब्रह्मा, शिव को भी दर्शाया गया है। राम की शिव पूजा का दृश्य इनमें झालावाड़ चित्रांकन की विशेषताओं का प्रतिनिधि अंकन है। इसी प्रकार रावण का बध के अंकन में जो भंगिमा राम तथा लक्ष्मण की दर्शाई गई है वह बड़ी प्राणवान है। भरत मिलाप का दृश्य अत्यंत भावपूर्ण है। इसमें राम और भरत दोनों एक–दूसरे को बाहों में लिए जिस तरह से मिल रहे है, वह भंगिमा राजस्थान की अन्य शैलियों में इस प्रसंग पर बनाए चित्रों में कहीं नही मिलती है। इस अंकन में रंग और रेखाएं स्वयं बोलती हैं तथा शब्दों के लिए तो मानो कोई स्थान ही नही बयां है। इसी क्रम में एक दृश्य में दो सुंदर पक्षियों को डाल पर बैठे हुए दर्शाया गया है।

पक्षियों के रंग चटख हैं, जिनके कारण वे सजीव दिखाई देते हैं। एक आलिए के चित्र में सुंदर गमले में पुष्प वल्लरी तथा उसमें ऊपर तक फल रखें हैं, जिन पर कुछ पक्षी बैठे हैं। इनमें मोतियों की माला को बतख़ समान वे पक्षी चोंच में पकड़े हैं। इस अंकन पर ईरानी प्रभाव की छाप समीक्षकों द्वारा व्यक्त की गई है। इन आलियों में छावनी के सुंदर जलाशय, घाट पुष्प वीथिका व सधन वृक्ष सहित वन जीवों के नेत्ररंजक चित्र हैं जिनमें कई जंगली पशु आखेट तथा जलाशय में किल्लौल करते पक्षियों को चित्रित किया गया हैं। संभवतः यह तत्कालीन छावनी के चित्रकारों द्वारा आंखों देखें दृश्य रहे हैं। अन्य चित्रों में दो सुंदर चित्र नृत्यांगनाओं के हैं, जिनकी निर्माण शैली अन्य शैलियों से पूर्णतः भिन्न हैं। वे नृतकियां न तो मेवाड़ शैली की स़्रियों की तरह हैं ना ही बूंदी शैली की नारियों की तरह ठिगनी हैं। और ना ही जयपुर शैली की स्त्री की तरह लंबी। ये सुंगठित देह वाली तन्वगी नारियां हैं। इनके वस्त्र अत्यंत आकर्षक हैं जो पंक्तिबद्ध हैं। चित्रकार ने अत्यंत कुशलतापूर्वक सधे हुए अनुपात से इनका चित्रण किया है। भित्तियों व कक्षों की छतों पर सुंदर

बेलबूंटे व झालावाड़ नगर की तत्कालीन प्राकृतिक दृश्यावली भी पूरे कौशल के साथ प्राणवान तरीके से उकेरी गई हैं। इनमें अंगूर की बेल का अंकन बेजोड़ है। इन दृश्यों पर मुगल प्रभाव स्पष्ट रुप से दिखाई देता है जो मुगल शैली में ईरानी प्रभाव से आया। ये चित्र बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में बनाए गए प्रतीत होते हैं।

उक्त चित्रकारों ने अपने समय में पृथ्वी विलास, श्रीनाथजी की हवेली ओर झालरापाटन की प्रसिद्ध विनोद भवन की हवेली में भी अनेक चित्र बनाए जिनमें राजा,रजवाड़ा शैली, देवी–देवता, अवतार, लीला प्रमुख हैं। झालावाड़ जिले में गागरोन दुर्ग सूरजपोल द्वार की पूरी छत पर कोंटा महराज रामसिंह तथा उनकी सेना की विशाल चित्रकला कोटा शैली का सुंदर चित्र है। झालरापाटन के शांतिनाथ मंदिर, सारथल वालों  की छतरी तथा यहां कई पुरानी इमारतों में आज भी चित्रांकन की तत्कालीन परंपरा के दर्शन होते हैं। कला समीक्षकों का मानना है कि– 'ये चित्र इंग्लैंड के लेंडर स्केल पेंटर, कान्सलेबल टर्नर की तेलविधि से बने हैं।, जिनमें यूरोपियन प्रभाव प्रमुखता से हैं। इनमें वाश चित्रों का अपना महत्व है। ये चित्र 1902 ई0 से लगभग 1945 ई0 तक अवधि के भी पश्चात् तक बने प्रतीत होते हैं। इनमें एक आवक्ष चित्र यहां के शासक राजेन्द्र सिंह सुधारक का है, जिनका समय 1929 से 1943 ई0 तक रहा इन चित्रों में यर्थाथ स्पष्ट है तथा वे चित्र कंपनी कला धरोहर से प्रभावित मान जाते हैं इन चित्रों का रंग अत्यंत चमकदार रुप में प्रयोग किया गया है। यहां इनकी कई ताने बनाई गई हैं, लेकिन इनमें भारतीय बीज का भी मिश्रण है। इनमें प्रमुख रुप से नील, गुलाबी, हल्के हरे, पीले, लाल, कत्थई रंगोंका सुंदर प्रयोग हुआ है। इनमें मिश्रित रंगो का भी प्रयुक्त किया गया है। झालवाड़ के पुरातत्व संग्रहालय में सुनहरे देव चित्रों की हस्तलिखित मद्भागवत, अवतार चरित्र, पुरुषोत्तम महात्म तथा बारहमासा के ग्रंथ देखने योग्य हैं।इनमें देव चित्रों, अवतारों के चित्र स्वर्ण सहित लाल, नीले, रंगों से बने हुए हैं, जो समीक्षा एवं शोध की दृष्टि से चित्रांकन परंपरा में अभी तक अज्ञात व अछूते हैं।

इस प्रकार शौर्य, उत्साह, पौरुष की अनुपम अभिव्यक्ति के साथ–साथ इन चित्रों में भावपूर्ण भक्ति, देवों की दिव्य लीला, रास, शालीनता और गौरव के मध्ययुगीन आदर्शो का ऐसा संतुलित मिश्रण है, जिनमें एक युग की सुंदर झलक मिलती हैं और यही झलक झालवाड़ की चित्रांकन परंपरा की वह कलात्मक जीवंतता जिसका मोहक स्वरुप आज भी देशी–विदेशी पर्यटकों और कला समीक्षकों को यहां खींच ले आता है।

**फोन – 26100207**

○○○

# बाहा बोंगा : प्रकृति से संसर्ग का पर्व

❑ चंद्रमोहन किस्कू

संतालों के दैनंदिन जीवन यात्रा के साथ प्रकृति का रिश्ता बहुत ही गहरा है, अपनी प्रियतमा के जैसा ही। वे प्रकृति के साथ हंसते हैं, बोलते हैं, रोते हैं, गाते हैं। संतालों के लिए नदी–नाला, पहाड़–पर्वत एक पूरी जीवन शैली है। इनके वर्ष का आगमन भी प्रकृति वंदना के साथ होता है। जब जंगल के पेड़ों से पुराने पत्ते गिरकर नये पत्ते आते हैं, पूरी दुनिया पर जब हरियाली छाती है, तब इनके नये साल आते हैं। लताओं और पत्तियों के बीच रंगों और सुवास से समृद्ध पुष्प आवरण मानव हृदय में नई आशा और ऊर्जा का सृजन करता है और तब ही संताल परंपरा के अनुसार नये साल का शुभागमन होता है।

संताल प्रकृति पर नजर बनाये रखते हैं, प्रकृति के बदलाव को देखकर ही वे अपने पर्व–त्यौहार मनाते हैं। अन्य समुदाय की तरह संताल भी वर्ष भर अनेक पर्व–त्यौहार बड़े ही हर्ष–आनंद के साथ मनाते हैं। सोहराय महापर्व के बाद द्वितीय सबसे महत्वपूर्ण पर्व बाहा पर्व ही है। बाहा शब्द का शाब्दिक अर्थ पुष्प है, इस हिसाब से बाहा पोरोब या बोंगा पुष्प का उत्सव हुआ। पंडित पी0ओ0 बोडिंग साहब के अनुसार यह पर्व फाल्गुन महीने में (अंग्रेजी फरवरी–मार्च), जब चन्द्रमा अपने चतुर्थांश में होता है, मनाया जाता है। जब सखुआ में फूल भी सुगंध बिखेरता है, तब मनाया जाता है बाहा बोंगा। सखुआ और महुआ के फूलों का बाहा बोंगा में विशेष पूजा सामग्री के रूप में उपयोग होता है। संतालों के पुरखों में लिखने–पढ़ने का प्रचलन नहीं था, इसलिए वे अपनी पौराणिक कथा–घटनाओं को कथा–कहानी और गीतों के माध्यम से अपनी भावी पीढ़ी को अग्रसित करते थे। वे प्रकृति के बंधु थे, इसलिए बांगा की काल गणना भी प्रकृति को देखकर ही की जाती है। बाहा बोंगा के समय गाये जाने वाले गीत बाहा सेरेंग से यह प्रमाणित हो जाता है। इन सब गीतों के रचनाकार कौन हैं, यह सटीक रूप से बोलना बहुत कठिन है, पर रचनाकार कोई भी हो उन्होनें इन गीतों में अपनी हृदय की भावनाओं को उद्वेलित किया है, प्रकृति का सटीक वर्णन किया है।

’हेसाक मा चोटेरे,
ज गोसांईं, तूदे दोय रागेकान
बाड़े मा लाड़े रे
जा गोसांईं, गुतरूद दोय सांहेदा
देश चोंग नाचुरेन, चोंग बिहुरेन
जा गोसांई, गुतरूद दोय सांहेदा

नाचुर तेहो नॅचुरेन
जा गोसांईं, तूदे दोय रागेकान
बिहुर तेहोय बिहुरेन
जा गोसांईं, गुतरूद दोय दा'

यह गीत संतालों द्वारा हजारों सालों से गाए जाने की परंपरा चली आ रही है। संताल युवतियों में गीत बाहा बोंगा में मधुर सुर के साथ फूटती रहती है, जिसका हिंदी रूपान्तर इस तरह है—

'पीपल की ऊंची डालों पर
गाती हुई तुत पंक्षी,
वट की झुकी टहनियों पर
काठफोड़वा विश्राम कर रहा है
काल के परिवर्तन के साथ
हे गोसांई, तुत गा रही है
काल के परिवर्तन के साथ
गुतरूद विश्राम ली है
प्रकृति के अवश्यम्भावी बदलाव में
हे गोसांई गुतरूद ने लिया है विश्राम'

बाहा पर्व में हर्ष— आनंद तो होताही है, इस अवसर पर आपसी वैर और दुश्मनी भी भुलाने की परम्परा है। हिन्दू समुदाय के लोग जिस तरह आपस में रंग लगाकर अपनी दुश्मनी को भूलकर एक नए मधुर रिश्ते की शुरूआत करते हैं। ठीक वैसा ही संताल पानी से अपने प्रियजन के साथ अपने मनमुटाव को मिटाकर प्यार भरा रिश्ता आरंभ करते हैं। गांवों में इस अवसर पर अपने प्रियजन और कुटुम्बों को आमंत्रित करते हैं। पानी का यह खेल ज्यादातर जीजा—साली, जीजा—साला, देवर—भाभी, ननद—भाभी वाले रिश्तों में बहुत ज्यादा होता है। दौड़ा—दौड़ाकर अपने हृदय के निकट के लोगों पर पानी डाला जाता है। अपने से बड़े रिश्तों पर पानी डाला जाता है, पर वह कुछ शिष्टाचार के साथ। इस खेल से सबंधित यह गीत उल्लेखनीय है :—

'तेहेंग दो लोटाते दाक दोंग दुलामारे
तेहेंग दो बाटी ते दाक दोंग आरेजआमारे
लोटा दाक दोंज दुलामा बोहोग रे
बाटी दाक दोंज दुलामा होड़मो रे।

तेहेंज दोन्ज दुलामा  कुंज दाक बोहोग रे
तेहेंज दोन्ज बोहेलामीदाक बोहोग रे
कुंज दाक इ सफायताबोन मोने माइला
डाड़ी दाक ए माराव ताबोन ओंतोर माइला।'

**हिंदी अनुवाद**

'आज मैं लोटे से पानी डालूंगा
आज मैं कटोरे से पानी डालूंगा
लोटे का पानी माथे में डालूंगा
कटोरे का पानी शरीर में डालूंगा
आज मैं माथे पर कुंए का पानी डालूंगा
आज मैं तुम्हें कुंए के पानी से धो डालूंगा
कुंए के पानी से मन का मैल साफ होगा
कुंए के पानी से हृदय का मैल साफ होगा।'

इन गीतों में अतीत की कहानी भी छिपी रहती है। बिन्ती, बांखेड़, और थुतियों से पता चलता है संतालों के आदि वासस्थान हिहिड़ी–पिपिड़ी था। आज विद्वानों के अनुसार हिहिड़ी–पिपिड़ी आज के हिमालय पर्वत को ही कहते हैं। वहां से वे अपनी आजीविका की तलाश में एक स्थान से अन्य स्थान प्रस्थान करते हैं। एक समय वे हाराता में निवास करते थे। लोककथाओं से ही पता चलता है उस समय भगवान मनुष्यों के अनैतिक कामों को लेकर बहुत क्रुद्ध हो गए थे  और मानव के विनाश के लिए पांच दिन–पांच रात्रि तक आसमान से आग की वर्षा किया था। इस तरह की प्रलय का वर्णन बाइबल के पुराने नियम और कुरान धर्म ग्रंथ में भी पाया जाता है, पर उनमें आग की वर्षा के बदले जल प्लावन का उल्लेख है। हाराता की उस प्रलय का ही वर्णन इस गीत में साफ झलकता है।

तोकोय कोको सारलेदा हिहिड़ी रेदो हो
तोकोय कोको सागुनलेदो हिहिड़ी रे दो
मोड़े कोको सारलेदा हिहिड़ी रे दो
तुरूई कोको सागुन लेदा पिपिड़ी रे दो
मोड़े सिंज मोड़े निंदा
सेंगेल दाक ए दाककेदार।
हो मनोवा टोकरेबोन तनहेकान

हो मनोवा तोकरेबोन सोरोलेन ?

हिहिड़ी में तीर किसने चलाया
पिपिड़ी में शुभ कार्य किसने किया

'पांच देवताओं ने तीर चलाये
छह देवताओं ने शुभ कार्य किये।
पांच दिन पांच रात्रि
अग्नि वर्षा के दौरान
हे मानव आप कहां थे
हे मानव आप कहां आश्रय लिये थे।'

संतालों का जंगल के साथ गहरा रिश्ता है, उन्हें जंगली जड़ी–बूटियों का अच्छा ज्ञान है। इसका वे औषधि के रूप में अनेक कालों से उपयोग करते आ रहे हैं। संताल हुल के समय इन जुड़ी–बूटियों से ही अपने हरे घाव को सुखाते थे। निम्नलिखित इस गीत से उनके औषधि के ज्ञान के संबंध में पता चलता है :–

'बुरूरे सारजोम बाहा
लेदोब– लोदोब सारजोम बाहा।
बीर रे मुरूद बाहा
जेगेंद–जेगेंद मुरूद बाहा,
सिद मेसे गातेंज हो
सारजोम बाहा दो
तियोग मेसे सागांज हो
नुडुकुज बाहा दो।
सूद रेंज बाहाया
नुडुकुज बाहा दो।
सिंज बीर रे सारजोम साकाम,
देला दाइलांग हेज अगुया
मान बीर रे मातकोम साकाम,
देला दाइलांग हेज अगुय
तेहेंज दोले नुम आकान तोड़े पुखरी रे

तेहेंज दोले नाड़कावाकान बाहा बांदेला रे
गापा दोले बोंगाया सारजोम बाहापा दोले

बाहाया मीरू बाहा (पर्वतों में वृक्षों पर लदे हैं शाल पुष्प वनों में पलाश फूल नजरों को विचलित करते।)

'हे मित्र तोड़ो न जरा साल फूल
हे संगी तोड़ो न जरा अमलतास के फूल
बालों में सजाऊंगी अमलतास के फूल।
सिंज वन से सखुआ के पत्ते
चलो सखी तोड़ लाएं।
मान वन से महुआ के पत्ते
चलो सखी तोड़ लाएं।
आज हमने स्नान किया तोड़े पोखर में
बालों को साफ किया बाहा तालाब में
कल देवताओं को समर्पित होगा साल के फूल
कल बाल में सजेंगे मीरू फूल।'

इस गीत में साल के फूल और मीरू फूल का उल्लेख है। वैसे तो साल फूल और फल खाया जाता है और मीरू फूल औषधि के रूप में उपयोग होता है।

संतालों में बाहा बोंगा कब से प्रचलन में आया, यह कहना बहुत ही कठिन है। लोक कथाओं से पता चलता है, बाहा पर्रता में निवास के समय से मनाया जा रहा है। लोक कथाओं के अनुसार संताल हाराता में बहुत ही शांतिपूर्वक थे, भोजन–पानी का अभाव था। पर वे अपने सृजनकर्ता ठाकुरजी को प्रायः भूल ही गए थे। लोभ–लालच, अनैतिक काम और बुरे आचरण से उनके आंखों पर धूल जम गया था, उन्हें ठाकुर जी का स्मरण नहीं रहा। दया दर्द और धर्म–कर्म से दूर भागने लगे। ठाकुरजी मनुष्यों के ये काम और व्यवहार को देखकर बहुत क्रुद्ध हो गए। वह मानव को विनाश करने का विचार किया। पर पिलचू हाड़ामा (आदि पिता) और पिलचु बूढ़ी(आदि माता) हाराता में भी ठाकुर जी को भूले नहीं थे। वे दोनों ठाकुरजी बातें सुनकर बहुत चितिंत हुए उनसे ऐसा न करने का आग्रह किया गयाा पर ठाकुरजी अपनी सोच पर अड़े थे पर अपने भक्त पिलचु हड़ाम और पिलचु बूढ़ी की आग्रह पर मानवों को एक मौका देने के लिए राजी हो गए। पिलचु हाड़ाम और पिलचु बूढ़ी दोनों मिलकर मानवों को बहुत समझाए, पर वे अपने रास्ते से भटक गए थे। उलटे इनका ही अपमान हुआ, ठाकुरजी की पूजा करना उन्हें स्वीकार न हुआ। इससे ठाकुरजी धरती से मनुष्यों को खत्म करने के लिए पांच दिन–पांच रात्रि

अग्नि वर्षा किया। आग की वर्षा करने से पहले वह एक जोड़ी मानव के साथ सभी जीवों की एक जोड़ी सुरक्षित स्थान पर भेज दिया था, जिससे धरती में फिर से मानव वंश की वृद्धि हुई।

बाहापर्व प्रकृति के साथ सत्संग का त्यौहार है। इसमें सोहराय की मस्ती नहीं है। इस अवसर पर मुर्गे की बलि चढ़ाया जाता है। उत्सव के एक दिन पहले गांव के युवाओं द्वारा जाहेर थान की साफ सफाई किया जाता है और जाहेर साड़िम का निर्माण किया जाता है। एक जाहेर एरा, मोड़े को और मारंग बुरू के लिए और दूसरा गोंसाई एरा के लिए। उसके बाद स्नान करते हैं और विभिन्न पूजा के सामान पर तेल लेपन करते हैं जैसे– सूप, टोकरी, तीर–धनुष, गड़ासे, सीरम झाड़ू, कलाई में पहना जाने वाले कड़ा, गले का हार, एक घंटी, एवं सिंगा। इन सभी का उपयोग दूसरे दिन के दौरान होता है।

पूजा के प्रथम दिन तीन देवों का आविर्भाव तीन अलग–अलग व्यक्तियों में होता है। जाहेर एरा जोकि देवी हैं फिर भी किसी पूरूष पर ही आविर्भाव होते हैं और अपनी सामान टोकरी और झाडू ग्रहण करती हैं। मोड़े को तीर और धनुष ग्रहण करते हैं और मरांग बुरू गड़ासे पकड़कर जाहेर थान की ओर प्रस्थान करते हैं। जाहेरथान में जाहेर एरा झाडू बुहांरती है और नाइके इन देवताओं को अपने साथ लाये सामग्री रखने को कहते हैं। इसके बाद देवताओं से नायके वार्तालाप करते हैं। अन्त में नायके द्वारा बोंगाओं का स्नान कराया जाता है।

पूजा के दूसरे दिन प्रायः गांव के लोग जाहेर थान को जाते हैं, जिन लोगों पर बोंगा या देका आविर्भाव हुआ है वे अपने सामान के साथ रहते हैं। एक साल वृक्ष का चुनाव कर मोड़े के द्वारा तीर चलाया जाता है। मरांग बुरू उस पर चढ़ कर साल के फूल से लदा टहनी तोड़ते हैं और जाहेर एरा द्वारा वह फूल अपनी टोकरी में एकत्र करते हैं। यही फूल नाइके गांव के लोगों को भेंट स्वरूप प्रदान करते हैं। औरत इसे अपने जूड़े में सजाती है और पुरूष इससे अपने कान को सजाते हैं। नाइके द्वारा मुर्गे की बलि दिया जाता है और उसे पकाकर प्रसाद स्वरूप नाइके और उनके पुरूष सहयोगी खाते हैं। पूजा की समाप्ति पर नाइके बोंगाओं के पैर धोते हैं। पैर धोने का यह काम चलता रहता है नाइके के घर तक। गांव के प्रत्येक घर के छटका में लोटे में पानी और तेल सजाया रहता है। नाइके और बोंगाओं के आगमन पर उनके पैर धोया जाता है और अवशिष्ट जल लोगों में डाला जाता है।

संतालों के जीवन में बाहा बोंगा और बाहा अर्थात पुष्प का बहुत महत्व है। प्रकृति के संतान होने के नाते वह प्रकृति की रक्षा भी करते हैं। पर आजकल आदिवासियों द्वारा जंगल की कटाई का विरोध करना महंगा पड़ रहा है और उन्हें विकास विरोधी होने का उपनाम दिया जाता है जो की सर्वथा अनुचित है।

**मो0– 9732939088**

○○○

# वासन्ती ओज से भरे छत्तीसगढ़ के ददरिया गीत

❑ डुमन लाल ध्रुव

लोग कहा करते हैं कि 'कलम की ताकत' के सामने तलवार की ताकत का मुकाबला नहीं है। बिलकुल ठीक। पर मनुष्य की वाणी के सामने तो ये दोनो ही तुच्छ हैं। मनुष्य की जिस वाणी के सम्मुख तलवार की ताकत तुच्छ है, कलम की ताकत भी नागण्य है, उसी मानवीय वाणी से मुखरित होता है छत्तीसगढ़ का लोकगीत ददरिया–जिसने सबसे पहले मनुष्य के गले में ही जन्म लिया था और आज दिन तक वह ताजगी के साथ मनुष्य के गले में ही जिन्दा है। इस पवित्र स्थान को छोड़कर जैसे वह और कहीं जाना नहीं चाहता। छत्तीसगढ़ के साथ मनुष्य ने समाज के बीच रहते हुये युग के युग बिता दिये, पीढ़ियां पर पीढियां मिटती चली गईं पर मानवीय वाणी का अमूल्य और जीवंत खजाना आने वाली पीढ़ी के गले में अब भी अक्षुण्ण रूप से सुरक्षित चला आ रहा है।

'डेरी आंखी फड़के सगुन जागे ना
जोड़ा कौआ बोले छानी म आके ना
येदे मुनगा के डारा चिरईया बांटे चारा
जरूर आबे ना................'

छत्तीसगढ़ में ददरिया गीतों के निर्माण करने वाले लोक जीवन का एक भी ऐसे शब्द से परिचय नहीं होता जो उसकी अपनी जिंदगी की आवश्यकता से उत्पन्न नहीं हुआ हो। ददरिया का प्रत्येक शब्द एक सामाजिक यथार्थ को अपने संकेत द्वारा व्यक्त करता है। ददरिया लोक साहित्य में प्रयुक्त 'सूरज' की व्यंजना अभिजात्य–वर्ग के सूरज जितनी ही नहीं है। उसकी सांकेतिक लक्षण उस सूरज से है, जो किसान के लिए खेत पर काम करने का संदेशा लेकर आता है, जो उसके लिए काम करने के खातिर दिन भर उजाला किये रहता है, जो अपनी गर्मी से उसकी खेती बढ़ाता है, उसका धान पकाता है।

'रद्दा के मोखला कांटा आमा के बगरे चांटा
कहि दे संदेशा मोर जोड़ी ला रे।।
मुनगा में बइठे कउंवा बोलत हे लहुवा–लहुवा
दे दे संदेशा मोर जोड़ी ला रे।।

फुटहा मंदिर म कलश नईहेचार दिन के अवइया दरस नइहे।'

इस तरह प्रयुक्त शब्दों के भीतर प्रेमी मन को हलका करने के लिए मंदिर की घंटियों में मीठी कामना लेकर परस्पर प्रेम की मधुर लालसा, अपने चतुष्पद और

द्विपद शत्रुओं को परास्त करने की बलवती भावना, शब्द शक्ति से रद्दा के मोखला कांटा का अपसरण करने वाले जादू–टोने व मंत्रोच्चार से प्रकृति के अंधप्रकोपों पर अपना प्रभाव डालने की स्वाभाविक चेष्टा हमें सर्वत्र मिलती है। प्रेमी ददरिया के माध्यम से शब्द की शक्ति में कितना गहरा विश्वास करते हैं। विश्वास का कारण यह भी हो सकता है कि प्रेमी–प्रेमिका सामाजिक संबंधों और अपने द्वारा व्यक्त की गयी प्रतिक्रियाओं को संगठित करने में ददरिया की मनमोहक पंक्ति ही उपयोगी हुई।

लोक साहित्य की दृष्टि से देखा जाए तो ददरिया मानवीय गीतों का अध्ययन है। प्रत्येक शब्दों में प्रेम का, समाज का, नाता–रिश्ता का महत्वपूर्ण सत्य व्यंजित होता है और उस सत्य का भी कोई चरम और सूक्ष्म रूप नहीं होता। उसकी एक ऐतिहासिक सीमा होती है और प्रेम गुणों में अभिव्यक्ति होने के पश्चात ही वह अपना अस्तित्व ग्रहण कर पाता है। इसलिए प्रेमी भी प्रयुक्त ददरिया में सत्य का ऐतिहासिक मर्यादा का ध्यान रखते हुए उसी हिसाब से परखते हैं।

'पानी रे पिये पियत भर ले
दोसदारी झन छूटे जियत भर ले
मोला मोहि डारे राजा
तोर बोली बचन मोला मोही डारे
तरी फतोई उपर कुरता
रहि–रहि के आथे तोरेच सुरता'

ददरिया दृष्टि परंपरा को नकारती नहीं बल्कि उसके माध्यम से भावात्मक एकता की, कल्पना की, एकता मूलक संस्कृति को समझने–पहचानने की कोशिश करती है। वह दृष्टि, धर्म, समाज, संस्कृति और सम्प्रदाय के मोहातीत सही अर्थ जानने को भी व्यग्र है। उसमें न पूर्वाग्रह है, न विद्वता का उद्घोष, बल्कि खेत–खलिहानों से लेकर गांव, शहर, राजधानी से लेकर महासागर तक निरंतर खोज की चाह है। ददरिया में ग्रामीण जीवन की अंतरंगता है, यौवन की अल्लहड़ता–उमंगता है। इसे न जानने वाले, न सुनने वाले, न गुनगुनाने वाले भी बहुत कुछ जानने को विवश होते हैं।

'डारी रे डारी रूखवा के डारी गा
जेमा घूमरे मन भांवरा
उड़ि जाबे काली ओ
तोर चेहरा आंखी म झूलत रहिथे ना
खलबल खइया ताल तरइया
पानी मारत हे हिलोरा

मया धरा के कहां भुलागे

बइठे हंव तोर निहोरा’

असल मायने में आंचलिकता की, लोक जीवन की सुगंध फैलाने, बिखेरने वाली ददरिया गांव के एक–एक जन को नायक बनाकर अमर कर देती है। तब लगता है कि शहर हो या गांव, हर व्यक्ति की अपनी एक पात्रता है, हर गांव ददरिया है। ददरिया की प्रत्येक पंक्ति जिंदगी की सांस चलते रहने के लिए प्रेरित करती है। ददरिया ग्रामीण जीवन का आईना लेकर खल्लारी मेला जाने की जिद करता है–गजब दिन भइगे राजा तोर संग नइ देखेंव खल्लारी मेला।

इसमें बोलियों की नहीं, पहनावा, ओढ़ावा की नहीं, जाति–पांति की नहीं या आंखों का इशारा इसके लिए काफी नहीं है। ददरिया गीतों को पूरे मनोभावों से गाकर देखें तो लोक–साहित्य में लोक–समाज की स्वतंत्र–अभिव्यक्ति से आत्म–प्रकाश को आलोकित करता है।उस पर किसी के भी बंधन या अंकुश का जोर नहीं रहता। इसलिए उसके अक्षरों में जन–जीवन का इतिहास अधिक स्पष्ट, सीधा, निर्विकार और विशुद्ध बना रहता है। ददरिया के माध्यम से सहज और सुगम पथ से अतीत तक पहुंचने मे उतनी कठिनाई नहीं होती।

’नवा सड़क म चले रे कुकरा

तोर बर मुजगहन मड़ई म ले देहूं लुगरा।।’

जब तक मनुष्य समाज के बीच अपना जीवन निर्वाह करेगा, उसके प्रत्येक व्यवहार का एक सामाजिक अर्थ रहेगा। आज छत्तीसगढ़ में ददरिया गीत के प्रणय पक्ष भी सामाजिक परिवर्तन से बच नहीं सका है। विज्ञान की उपलब्धियों ने गांव को चंचल बना दिया है। ट्रांजिस्टर, रेडियो, सिनेमा और टेलीविजन के कारण गांव की आकांक्षाएं अपेक्षाकृत बढ़ गयी हैं। इतिहास गवाह है कि कोई भी समाज अपनी परंपरागत संस्कृति को भुलाकर भविष्य की ओर प्रगति के कदम बढ़ा नहीं सकता पर इसका यह मतलब तो हरगिज नहीं कि संस्कृति को केवल सौंदर्यानुभूति की रंजन–सामग्री में ही निःशेष कर डाला जाए। अतीत की जानकारी इसलिए जरूरी है कि वर्तमान को बदलने में वह एक महत्वपूर्ण क्रांतिकारी भूमिका अदा करती है।

जइसे पवन संग पाना उड़ावै

नदिया के धार म डोंगा बोहावै

बंसुरी के टेर म हिरना लुभावै

जर–जर पतंगा अपन ला मिटावै

ददरिया गीतों में नायक के प्रति नायिका का समर्पण और एकनिष्ठ स्वरूप को उद्घाटित करती है–

’ जिनगानी पहा देहंव, लेके तोर नांव गा मरत खानी आ जावे,

छू लेहंव तोर पांव गा '

छत्तीसगढ़ में ददरिया की खासियत यह है कि उनकी हर पंक्ति, उनके विचारों, भाव–भंगिमा, आशा–विश्वास की भूमिका, पर टिका रहता है। कल्पना की असीम गहराई छुपी रहती है। सरल और सीधे–सादे अर्थों में सुंदर और सटीक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है।

'तवा म रोटी सेंकत रइतेंव
तोला तीर म बइठार के देखत रइतेंव
बटकी म बासी अउ चुटकी म नून
मंय गावत हंव ददरिया तंय कान दे के सून
संझा के बेरा तरोइया फूले
चिमटी भर तोर कनिहा तोहि ला खुले
रद्दा ला रेंगे झुलाले डेरी हाथ
तंय अकेली झन जाबे वो ले जाबे मोला साथ'

वास्तव में ददरिया की दृष्टि सभ्यता की बनावट के संतुलन में उपयोगी है। और इसलिए लोक दृष्टि में यदि स्वाभाविक रूप से यह भाव आता है तो वह इस दृष्टि की सार्थकता है। इसी दृष्टि को आधार मानकर वे कामना करते हैं कि आज का मनुष्य अपने लोक से आलोकमय हो। ददरिया अपने भावों में निरन्तर संवादशील है, वह प्रकृति से, प्रेम से सीधे संवाद करता है और इस प्रक्रिया में वह ''छिति जल पावक गगन समीरा'' से अपना संबंध स्थापित करता है। उनका यह मानना है कि लोक में सबसे महत्वपूर्ण है– संवेदना। यही संवेदना हमारी वृत्ति को गढ़ती है। मानुष भाव ही लोक का सच्चा भाव है।

ददरिया गीतों में अंत की कोई कल्पना नहीं है। यह वह धारा जिसमें उनके छोटी–मोटी धाराओं ने मिलकर उसे सागर की तरह गंभीर बना दिया है। सदियों के घातों –प्रतिघातों ने उसमें आश्रय पाया है। मन की विभिन्न परिस्थितियों ने उसमें अपने मन के ताने–बाने बुने हैं। प्रेमी–प्रेमिका ने थक कर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है। बुजुर्गों ने अपने मन बहलाए हैं। बिरही युवकों ने मन की कसम मिटाई है। किसानों ने अपने बड़े–बड़े खेत जोते, मजदूरों ने विशाल इमारतों पर पत्थर चढ़ाए हैं और मौज–मस्तियों के चुटकुले सुनाए हैं। सच कहूं तो ददरिया जीवन को स्पंदित करती है। लोक–जीवन में प्रेमी–प्रेमिका ददरिया गीतों के माध्यम से सुख–दुःख को अपने में समेटकर प्रणय लोक में आश्रय पाते हैं। प्रणय के हर मूल में और जीवन के हर मोड़ में उल्लास और आनंद बिखेरते हैं।

'करिया रे हंड़िया के उज्जर हावय भात
निकलत नई बने, अंजोरी हावय रात।

आमा ला टोरे खाहूंच कहिके
तंय दगा दिये मोला, आहूंच कहिके।
एक पेंड़ आमा, छत्तीस पेंड़ जाम
तेर सेती मयारू मंय होगेंव बदनाम।
मटकी के मटकी फोरे म फूटही
तोर मोर पिरित मरे म छूटही।'

वर्तमान काल में ददरिया गाने की परंपरा क्षीण नहीं हुई है। ताल व स्वर पर आधारित होकर स्वच्छंद प्रकृति के प्रांगण का स्वच्छंद लोक जीवन की निर्बंध लय और भावनाओं के सामंजस्यपूर्ण आनंद के साधन का एकमात्र स्त्रोत है। सरस, सुंदर एवं हृदयग्राही संगीत जो सात स्वरों में बद्ध होने के कारण बरबस हृदय को आकर्षित करता है। स्वयं पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने लिखा है – '' स्नेह की सेवा, स्वामिभक्ति की दृढ़ता, विश्वास की सरलता, वचन की गौरव रक्षा और ममत्व का अधिकार, इसी में छत्तीसगढ़ की आत्मा है। मेरा भी यही मानना है कि छत्तीसगढ़ के जन–जीवन में ददरिया गीतों में चरित्र की एक ऐसी उज्जवलता है जो अन्य प्रांतों के गीतों में नहीं पाई जाती।''

' नई दिखे गा...............नई दिखे ददा भाई रे लाला
काकर संग जांव चिरई चले आबे....
तंय हमार संन आ कोनो नहीं दिखे तोर संगवारी चिरई चले आबे
तंय हमार संन आचिरई चले आबे
आगे कुंवार बने फुलगे जुंवार
बने लागे घर बागी संगवारी
तंय बनके आ फुलके चिरई चले आबे
उड़त चिरई ल मार पारे बान
ओ सुन्दर बन उड़ गे रे लाला
तोर गांव मं नइके काम चिरई चले आबे
उत्ती मं घास दिखे बुड़ती मं छांव
यही समे अलकर संगवारी
झन फिसलय तोर पांव चिरई चले आबे...'

ददरिया गीत अपनी छोटी सी शिल्पविधा में छत्तीसगढ़ के ऐतिहासिक, धार्मिक, पुरातात्विक, राजनैतिक विशिष्टताओं को वाणी देती है। ददरिया छत्तीसगढ़ के लोकजीवन की, खेत में काम करते हुए युवा अनुभूतियों को स्वर–लहरियों में प्रगट करने एवं श्रम का परिहार करने की एक विधा है। लोक

जीवन की दूसरी व्यवहारिक विशिष्टताओं का इसमें जो समावेश हुआ है, वह परिवर्तन संदर्भों मं स्वाभाविक ही है। अंचल की माटी की सोंधी महक से जनजीवन सराबोर होते हैं।

'आंखी मं रथिहा बिताये हे का
कइसे संगी नइ बोलय रिसाये हे का

मया के डोरी जोरी डारे रे...
लागे मोहना मोही ल मोही डारे रे...

पड़की परेवना बोलत हावे रे
लागे संगी के सइता डोलत हाबै रे...

नानकुन मुंह करे बात बड़े
तोरे मन के फुटानी में घात भरे......

आ मोरे बइंहा मं गांजा कली
गाड़ी चढ़के दिल्ली कोती भागी चली
भाग उड़े जीव नई बांचय रे
आके डोलिया सजा मोला ले जाते रे '

ददरिया में विषयों की विविधता तो है पर लोक जीवन का मूलाधार भी प्रतिबिंबित हाती है। लोक जीवन के क्रिया व्यवहार का यथार्थ देखने को मिलता है। जैसे–

' बिन पुरहन के तरिया रे, बिखरा बिनद पहार
बिन पुरूष के तिरिया रे, काकर गहे अधार।'

जिस प्रकार पुरइन पत्तों के बिना तालाब, तरू, वृन्द बिना पहाड़ ठीक उसी प्रकार पुरूष के बिना नारी भी शोभा कहां ? विरहिणी किसका सहारा ले ? छत्तीसगढ़ में ददरिया उल्लास यौवन का स्वच्छंद अभिव्यंजन है। इसमें प्रेमी की याद तो बहुत आती है पर प्रेमी को ही प्रणयाराधिका प्रणयातुर होकर पुकारती है।

'तोर मोर बोली हर लगे हे तन म
कोन जादू ला मारे फिरत हे बन म।
कुआं के पानी कुआंसी लागय रे

परदेशी चले जावे रोवासी लागय रे
उड़त चिरइया ला मार पारेंव तीर
कइसे खींचव राजा तुंहर तसवीर।।
मारे ला मछली, धरे ला टेंगना
आंखी–आंखी म झूलत हे, तोरेच रेंगना।।'

छत्तीसगढ की ददरिया हमारे अपने हैं। हम अपनी संपूर्ण आसक्ति को प्रेम में निहितार्थ देते हैं। हम एक दूसरे से इतना मया करते हैं कि अपने अस्तित्व का पूरा सार निचोड़ कर उन्हें देते हैं।

'मोला जावन देना रे अलबेला मोर
अब्बड़ बेरा होगे मोला जावन दे न..........

संझा के आये मुंधियारी होगे
गाय गोरू आगे अंधियारी होगे

आगी सुलगाहूं दिया बारे नइहौं
चाउर घलो रांधे बर निमारे नइहौं

कलकलहिन दाई मोला गारी देही
भइया हे गुस्सेलहा मोला मारी देही

काली फेर आहूं देखे बर तोला
हली भली जावन दे मयारू मोला'

यही ददरिया हमारी धरती के रचयिता और हमारे सांस्कृतिक इतिहास के निर्माता हैं जो हमारे दिवास्वप्नों और प्रेम की इच्छाओं की पूर्ति करते हैं। यौवन जीवन के वासन्ती ओज, सौन्दर्य उसका मधुर वैभव, प्रेम प्राणों का परिजात है तो पराग से सारा संसार सुवासित हो उठता है।

**मो0– 9424210208**

❍❍❍

# बाली में अध्यात्मोत्सव

❑ रजनी सिंह

इंडोनेशिया के राज्य 'बाली' की पावन भूमि पर पैर रखते ही ऐसा लगा कि अपने देश में ही आ गए हैं। एयरपोर्ट पर कार्यरत कुछ व्यक्तियों की वेशभूषा में अपने दक्षिण राज्यों की खुशबू का आभास और एयरपोर्ट से निकलते ही हमारा गाइड 'श्री मडे लाली' द्वारा 'स्वास्तिक अस्तु' और 'नमस्ते' संबोधन हमें आत्म विभोर कर गया। तभी गाइड मडे ने हमें बताया कि बाली में 90 प्रतिशत भारतीय मूलवंशीय हैं, जो यहाँ रोजी रोटी कमाने भारत से आए थे और धीरे धीरे यहीं के निवासी हो गए। इन्होंने अपनी हिन्दू सभ्यता, संस्कारों और परम्पराओं को जीवित रखने के लिए पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी संतानों को इनसे परिचित कराया और स्वयं इनका पालन किया। रामायण महाभारत जैसे हिन्दू ग्रंथों का अध्ययन–मनन करते रहने के लिए भी अपनी संतानों को प्रेरित किया।

वेशभूषा में हमने मंडे को लुंगी, लगाए देखा और सिर पर टोपी जो कुछ कुछ पहाड़ी भारतीयों की सी लगी, लगाए देखा। हमारा मन गर्व से भर गया कि मिनी भारत बनाए रखने में हमारे पूर्वजों की कितनी आस्था रही होगी और हो भी क्यूँ ना हो। भारत भूमि की महिमा अपरंपार हैं। Denpasar Bali के लिए 'गरूड़ इंडोनेशिया' नामक विमान से उड़कर हवाई अड्डे से सीधे 'स्विजवैल रैन फॉरेस्ट हॉटल' पहुँचे और संबंधित मेनेजर से कमरे की चाबी लेकर पैर पसारकर रात्री की गोद में विश्राम करते निद्रा में निमग्न हो गए। पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार हिंदी के प्रचार–प्रसार के साथ 3 दिन की उस यात्रा में गाईड 'श्री मडे लाली' तथा बस 'कुसुमा संजीव ट्रेवल्स' ने उसके ड्राईवर के साथ भरपूर सहयोग दिया। बाली में जगह–जगह नारियल के चौकोर बने दोनों में पूजा सामग्री रक्खी दिखाई दी। ज्ञात हुआ कि यह बाली में बालीवासी बुरी बलाओं से बचने और अच्छी आत्माओं को प्रसन्न करने के लिए पूजा करते हैं और इस प्रकार ईश्वर को मनाते हैं। सभी देवताओं को 'त्रिदेव' रूप में मानते हैं अर्थात् ब्रह्मा–विष्णु–महेश में समर्पित करते हैं। 'बौरोग और क्रिस डांस' में महाभारत की कुन्ती और उनका पुत्र सहदेव को पेश किया और बाँस से बनें 'वाद्यवृंदो' पर मधुर संगीत की धुन पर संगीतज्ञ के समक्ष नृत्यनाटिका देखकर मन प्रशंसा से भर गया। इसमें काली देवी का युद्ध नृत्य भी पेश किया। यह सब आदिवासी बाली वासियों की वेशभूषा के साथ पेश दर्शनीय लगी। पत्थरों पर उकेरी कलाकृतियों से अद्‌भुत तराशी गई प्रतिमायें पूरे बाली की शान बढ़ाती हैं। यह भारतीयता को जीने का सुदृढ़ उदाहरण है। यह सब हमारे भारतीयों जो अब हिंदू बालीवासी कहलाते हैं, के दृढ़ आस्था और अपनी जड़ों से जुड़े रहने की प्रबल चाह के कारण ही संभव हुआ होगा। यह सब हमने अपने गाइड तथा कई बालीवासी भाइयों से बात करने पर निष्कर्ष निकाला। एक मंदिर जिसका

नाम ‘उलूबट्ट’ था, के दर्शन किए। यह मंदिर पेन्नसुला की दक्षिणी चोटी पर स्थित प्राचीन मंदिर है। समुद्र से करीब सौ मीटर उँची चोटी पर विशाल क्षेत्रफल में फैला अभूतपूर्व कला और नक्काशी का नमूना है। करीब–करीब सभी देवताओं की मूर्तियाँ यहाँ स्थापित हैं। यहाँ नटखट बंदरों का साम्राज्य आने वाले यात्रियों के सामान पर झपटकर नुकसान भी कर देता हैं। मंदिर के प्रांगण में ‘पवित्र जलधारा’ से हमे आचमन करना शारीरिक बीमारियों से भी बचाता है, अतः तालाब में हमने भी आचमन किया। उसके पश्चात् पंडित द्वारा पूजा का आनंद भी उठाना अपनी प्रसन्नता को पूर्णता प्रदान करने के लिए आवश्यक समझा। सहजता से पूजा सम्पन्न हुई।

बाली के समुद्री तटों की छठा अबतक पुस्तकों में पढ़ी थी अतः अब साक्षात् ‘तेजुंग बेनोय’ तट पर अनेक समुद्री स्पोर्ट्स क्रियाओं का आनंद उठाया। केला राईड, मोटर बोट राईड, पेराट्रपर आदि राईडस के साथ दूसरी पार अनेक जीव–जन्तुओं जिनमें अजगर, पक्षी आदि के साथ खूब फोटो खिचाए। बाली की यात्रा का एक अविस्मणीय अवसर नहीं भूल सकते जब ‘उलूबट्ट’ मंदिर की दूसरी चोटी पर स्थित एक खुले स्टेडियम में अपार जनसमूह की उपस्थित में ‘रामायण’ का संक्षिप्त नृत्यनाटक जिसमें अभिनव वेशभूषाओं के साथ भगवान राम,माता सीता, लक्ष्मण, रावण, आदि के साथ विराट हनुमान जी द्वारा अभिभूत मंचन किया गया। ऐसा लगा कि भारत की रामलीला, मंचन ही बाली में आ गया। इसमें सैकड़ों देशी–विदेशी दर्शक मौजूद रहे। रावण का सीता को चुराना, हनुमान का लंकादहन और फिर रामसीता मिलन के साथ फोटो खिचाने की भीड़ स्मरणीय रहेगी। यह डांस Kecak कहलाता है।

बाली यात्रा के अन्य कई संस्मरण जिनमें ज्वालामुखी जो सक्रिय माना जाता है और पास में ही बठूर झील देखी। कोको सुपर गार्डेन में चाकलेट निर्माण के तरीके तथा विभिन्न प्रकार की जैविक चाकलेट्स खाई व खरीदी। वहाँ के गार्डेन की छटा अनोखी और अनेक प्रकार के बहुमूल्य वृक्षों से आच्छादित मनोहारी बाग में घूमकर सुख प्राप्त किया। बाली का मशहूर ‘कूटा’ तट जिसे मजाक में सभी लोग कुत्ता बीच कहने लगे, पर स्नान और उसकी वेगवान लहरों से अठखेलियाँ की। बहुत जगहों पर युवा कन्याओं को रंगीन पुष्प और पूजा सामग्री से सुसज्जित दोनों’ (नारियल के पत्तों से बना चौकोर पात्र) में भगवान त्रिदेव के समक्ष पूजा करते देखा। पता लगा सुंदर शिक्षित ‘वर’ प्राप्ति के लिए पूजा करती हैं। ‘बाली’ में अपनी भारतीय संस्कृति के विस्तरित रूप की छटा देखकर मन तन अपनी मातृभूमि भारत के प्रति नतमस्तक हो गया। अब तक इंडोनेशिया में अपने भारतीयों के प्रवास और निवास के बारे में पढ़ते–सुनते रहते थे लेकिन अब बाली यात्रा से सब कुछ स्मृति पटल पर मधुर दृश्यावलियों ने अपना अटूट स्थान जमा लिया। बाली वासी यूँ ही अपनी सभ्यता को फैलाते रहें।

ooo

# वृक्षों में जीवन होता है

❑ डा0 प्रभात कुमार
आई0ए0एस0

वृक्षों में जीवन होता है
होता है इनमें स्पन्दन,
वृक्षों में गति भी होती है
होता नन्हा कोमल सा मन।

लेते हैं वे साँस वायु से
बढ़कर यही बनाते हैं वन,
इनका भी वंशज होता है
होता प्यारा सा एक बचपन।

होती ललक इन्हें जीने की
होता है इनमें अपनापन,
चोट अगर यदि इन्हें लगे तो
मौन दर्द सहता इनका तन।

निर्बल बोल नहीं सकते हैं
इनका करो सभी अभिनन्दन,
करो इन्हें आलिंगन इतना
ताकि करें ये कभी न क्रन्दन।

❍❍❍

# The Constrained Arm of the Law

❑ **PRAKSAH SINGH (I.P.S)**

The maintenance of law and order is of utmost importance to realise the Prime Minister's dream of a 5-trillion-dollar economy, the Union home minister said in his address on the Foundation Day (August 28) of the Bureau of Police Research and Development. There could be no two opinions on that, but what is the reality on the ground, the actual state of law and order in the country?

We need to go back in time for a proper under-standing of the situation. September 22, 2006 was a historic day for Indian police forces-the Supreme Court gave a slew of directions for police reforms and directed state governments to set up institutions which would insulate the police from extraneous influences, give it a fair measure of autonomy in personnel matters, and ensure its accountability through complaint authorities at the state and district levels. The court also prescribed a transparent procedure for the appointment of DGPs, giving them and other officers in the field security of tenure. It laid down that law and order, and investigation work be separated in metro cities.

There were great expectations, people felt that the mandated directions would usher in a new dawn, make the police people-friendly and ensure the force gives the highest priority to enforcing the rule of law. Policemen thought it was the end of their nearly 145 years of serfdom. Thirteen years down the line, the dreams remain unfulfilled, if not shattered.

Who is to blame for this? The state governments are, of course, the prime villains. They felt the apex court's directions would destroy their dominance over the police, which they had been misusing and abusing for their partisan interests. The court's order contained a caveat that the directions would operate only "till

framing of the appropriate legislations" by central/state governments and Uts. State governments seized these stipulations to pass acts which, broadly speaking, legitimized the status quo with minor changes. Bihar was the first. 16 other states followed. The remaining states passed executive orders, purportedly in compliance with the court's directions. They set up the mandated institutions, but diluted their charters, vitiated their composition, and curtailed their powers. All states violated the letter and spirit of the court's directions, Justice K.T. Thomas lamented.

The central government takes the plea that since it is a state subject, they cannot do much about it. The explanation is unconvincing. The Centre has tremendous leverage in the form of modernisation and other grants, which it releases to state governments. They could have used this to influence the state governments to comply with the court's directions. However, nothing of the kind was done. The least the Centre could have done was to enact the Delhi Police Bill on the lines of the Model Police Act drafted by Soli Sorabjee. Even that remains pending to this day. The truth is that the Centre has never been serious about implementing the court's directions. Bureaucracy played a subversive role for the simple reason that it would have removed its hegemonistic control over the police.

Monitoring by the judiciary was not effective either. The court has been issuing warnings, threatening officers with imprisonment and issuing contempt notices in matters of much less gravity. A former home secretary of the Government of India once said that all the court had to do was send The home secretery and DGP of on one state to jail, and the remaining states would promptly comply, it may appear harsh, but sometimes such actions are necessary.

Police reforms, it must be clarified, include a comprehensive set of measures which go beyond the directions promulgated by the Supreme Court. The directions, no doubt, touch the core of

police functioning and if sincerely implemented by the states, would have a multiplier effect. Justice J.S. Verma, who submitted a report on amendments to criminal law in 2013, had urged states to "fully comply with all six Supreme Court directives in order to tackle the systemic problems in policing which exist today". He went on to say that if the court's directions were implemented, "there will be a crucial modernization of the police to be service-oriented for the citizenry in a manner which is efficient, scientific and consistent with human dignity".

The capabilities of the state police must be substantially augmented to deal with the multidimensional changes of the present times. There is huge shortage of manpower. We have only 192 policemen sanctioned per lakh of population rather than the required optimum of 222. Infrastructure deficiencies have a debilitating effect on the performance of the police. There is shortage of transport, housing facilities are dismal, and the few forensic laboratories are not able to cope with the large number of specimens sent for examination. Communication facilities also leave much to be desired-surprising though it may seem, there are 51 police stations in the country which have neither a telephone nor a wireless set.

Working conditions are extremely stressful. According to the Status of Policing in India Report, 2019, police personnel work for 14 hours a day on an average and this affects their physical and mental health. The insurgencies in different parts of the country take a heavy toll on police personnel's lives. In fact, more police officers die while performing their duties in India than in any other country. On an average, 703 police personnel died every year in India between 2010 and 2017. The comparative figure for USA is 151.

It is ironic indeed that on one hand, we are able to send a mission to the moon and on the other, we are struggling with a colonial model of policing. It is like participating in a Formula One

race with an antiquated Maruti 800. The results are there for anyone to see. The World Justice Project, which released the Rule of law Index 2019, placed India at 68th position out of 126 countries. Of the six South Asian countries, India is below even Nepal and Sri Lanka, Our score sheet under different parameters is: constraint on government powers-40/126, absence of corruption-80/126, open government-34/126, fundamental rights-75/126, order and security-111/126, regulatory enforcement-76/126, civil justice-97/126, and criminal justice-77/126. The figures are not flattering.

Good law enforcement provides the foundation for a stable democracy and thriving economy. Unfortunately, the state of law and order in the country leaves much to be desired. Apart from the crime situation, there are multiple internal security challenges in Jammu and Kashmir, the Northeast and Maoist-affected states. These can be tackled, but the police remain hamstrung by inadequate resources and uncongenial working conditions which, apart from being stressful, are not conducive to upholding the rule of law. It is high time that the police in the country are reorganised restructured and unshackled from the colonial chains which bind them to this day. That's the only way we can transform our rulers' police into the people's police.

❍❍❍

# Western Feminism and Hindu Womanhood

❑ **Sujatarao**

We are fortunate to have a great treasure of noble thoughts about women in our Hindu tradition. In spite of such a high tradition it is shameful that many women's organisations have imported western feminism and women liberation movements into our country. Hence it is high time that we require an aggressive "Swadesi Mahila Reformist Movement (SMRM) which stree will take up women's issues. We believe in Stree Sakthi and not stree Mukti. But it is a paradox that concepts of feminism and women Liberation that have developed in the west, like a fashion has become a rage in our college campuses, academic and literary discussions. The International movement on women had three different streams.

**Feminism**

Throughout the western history women were considered equal to slaves. Women were considered as mere private property of men in Babylonian code, Hebrew Law, English general Law etc., In these Laws the punishment for rape was only monetary (money) compensation. Till 19th century women had legal death by marriage in England and America. She did not have citizen's rights and had no right to private property. It was in the year 1866 that for the first time, the law providing married women the right for private property was legislated in England. It was in the last century that women generally got right to vote in western countries. Women got voting right in 1920 in America, in 1928 in England anti in 1945 in Ita1y. Many of the western thinkers are against women.

Aristotle: Women as slaves, Rousseau : Women's world is inside home , Shakespeare : "Frailty thy name is omen, Hitler: Woman was a mistake of God.

Feminism is a reaction to the male domination in the Semitic culture. Betty Freidan's "The Feminine mystique" was the most

popular feminist book in America. But after 20 years she wrote in her book "The second Stage" (1983) that feminism could not achieve results. Betty Freidan shook the conscience of feminists when she asked in her "Second stage" — "Without motherhood can I be really a woman?" She said man and woman should go together. One should not try to liberate one from the other. According to Hindu tradition men and women are complimentary to each other. Man is incomplete without woman and woman is incomplete without man.

They are like two half circles and together they become a full circle. She said family is important to social life. If the family is destroyed the whole society collapses. Hence according to Hindu social system family is the fundamental foundation on which the social edifice stands. For a family to stand firmly it should be based on a strong foundation of marriage which should be sacrosanct and inviolable. The two aspects are basic to the Hindu marriage system. The Hindu knows that nature has entrusted woman with the holy responsibility of giving life — the pro creation of continuing line of God's creation. To discharge this holy responsibility she should be properly enshrined in a household as a daughter, as a wife and as a mother in the safe environment of family, protected and guarded economically, socially and physically. Never she should be forced to fend for herself because of her vulnerability. As a daughter she should be taken care of by her father, as a wife by her husband and as mother by her children. She plays a pivotal role in all these three roles She is central to the family — a virtual fulcrum on which the whole family revolves.

## Woman Issues

### Agenda of Feminists in West

1. Issues of Gender or making of a woman.

2. Role of private property or economies in the exploitation of

woman.

3. Marriage as a bondage.

4. Sorrows like motherhood and pregnancy.

5. Family as an oppressive Institution.

6. Liberating woman from all.

To see everything through the eyes of patriarchy is an obsession of feminists, especially the radical feminists. Gender politics of feminists, is extremely anti-male. A woman is suppressed by man, by family, by society and by nature and a woman should rebel against all of them. Since marriage will adversely affect the freedom of women, feminists say that the concept of married couple should be rejected. Instead of marriage they proposed "stay-together" or "Live in relation". Many woman's liberators lived with men without marriage. Since man-woman relationship is the basis of these sufferings feminists propose to avoid men and have woman-woman relationship of lesbianism. As a liberation from womanhood they dressed like men and wanted liberation from bra and equal pay. Saree is accused as a dress that limits movement of women.

Just like women's liberators feminists say also that not only marriage, but family also should be rejected as it is the basis of inequality. To avoid family, single parent system of unwed mothers is developing fast in the west. Feminists like Shulamith Firestone have said that mother, pregnancy etc., are the sufferings given by nature to women, hence they should be rejected. Today disintegrated and broken families with rampant domestic violence have become a curse to western society. Psychologists in the western society have warned that wide spread mental tensions and tendency for violence among youth are a creation of this rejection of family.

U.N. report says, even though 50% of world population is women, only 1% of property is held by them. Prostitution of women and minor girls is a big business in the world. Amnesty

International reportedthat in Europe the maximum number of violence against women is in the most affluent (rich) country, viz.Switzerland. I have dealt with Feminism and women's liberation movements a bit elaborately. For a while, we may think that these are the things that are happening in far off land in the west. But no. It is not like that. Now they are happening in our midst. Now they have become part of the fashionable and progressive thinking of the elite people of our society. See the rise in the divorce rate in our country.

There are thousands of N.G.Os in our country financed by foreign donations. They are controlled by Churches and communists. Their aim is to attack age old Hindu religious traditions and loosen their faith in those religious traditions. The devotees thus alienated from their religion can be easily converted later on. The Sabarimala incidents are a wakeup call. These anti-national N.G.Os were able to influence the thinking of the supreme court judges and get a verdict favourable to them. Now you can understand how far, how wide and how deep they have spread their poisoness and vicious tentacles into social and religious fabric of Hindu society. Let us wake up and be aware of these dangers and work together and warn our people to unite, stand and fight against these anti-social,anti-national elements run by N.G.Os.

## Hindu womanhood

Our country had a long tradition of giving high position to women before the medieval history of India. Hindus have supported women to have:-

**(1) Equality :--** Women and men are two equal parts of God. This is the basis of Gender equality. Prakriti-purusha, siva-sakti, Ardhanariswara are divine equality symbols. Kalidasa describes one quality of God Siva as seeing no difference between man and woman. In yaga and coronation the

presence of wife is necessary to get eligibility to perform them.

**(2) Respect :--** Women are not only respected but also worshipped here in Bharat. Bhagavadgita says that first, woman worship was done by Mahavishnu himself upon his wife Lakshmi Devi. Devi puja or Sakteya religion in Hinduism and festivals like Durga Puja rose from this approach.

**(3) Education :--** In the west historically education of women was generally opposed, and first time it was demanded in 1792 in a book by Mary Wollstoncraft, "A vindication of the rights of woman". This book is considered as one of the earliest in Feminist philosophy in the west. On the other hand women are highly educated in ancient India. There were lots of Instances where women scholars have debated and engaged in philosophical discussions. E.g., Gargi's debate with Yajnavalkya. In Rig Veda there were more than 30 women poets like Yami, Romasa, Lopamudra, Apaala who were venerated as liberated seers (saadhvis). During the `Sangam' period there were about 200 poetesses. Poetess avvayar was one of them. Women are given education in Home science and house keeping before marriage.

**(4) Swayamvara Right :--** The right of `Swayamvara' that gives total freedom for woman to select her husband is a unique right in the world enjoyed by the ancient Indian women. For the first time in human history, in a thrilling incident , `Swayamvara Right' was established in Rig veda 10.39.7 to Shundhyu, the daughter of Purumitra who married Vimada by her choice, inspite of opposition by many powerful kings. The bridegroom in Sanskrit is called vara "one who is selected (by a woman)"

**(5) Political right :--** India has seen manyqueens ruling kingdoms and women using their political rights freely.

**(6) Legal Security :--** In older times crimes against women were

awarded highest punishments. Even if a woman commits mistakes she should not be thrown out of house or made an orphan. There were several heroes in Sanskrit literature who have saved women in their difficulties right from Aswins in Rigveda, Rama, Krishna etc.,

**(7) Right to Stree dhana:--** In the west till the last century a woman marrying on her own will loose her inheritance right to property. But in the ancient India `stree dhana' is the wealth that belongs only to the women. The word `stree dhana' appears first in `Gautama Dharma Sastra' in which, it is firmly said that it is the wealth that belongs to women. Indian law makers like Yajna Valkya had prescribed heavy punishment to those men who touch `stree dhana'. Division of property is according to "matruto bhagakalpana", (women should be given a share in property).

**(8) Woman -** a symbol of power or stree sakti. We believe in stree sakti not streemukti. There are innumerable stories of Asura nigraha sakti of Goddesses. Most of the heroines in Sanskrit literature are trained in martial arts. Siva cannot even stand up without `saki' with him, says Sankaracharya in his "Soundarya Lahari". The first female army in the world is the army of Empress Lalita in Lalitopakhyana (Lalita gadha sapatasati). There are innumerable female military fighters from Rig Ved upto the modern times. There is a long tradition of brave mothers. Gandhari said, " yato dharma tato jayaha" to her son Duryodhan who wanted his victory. Kunti sent her son Bhima to fight with Baka. She asked her sons to start war with Kauravas. Mothers of Sivaji, Vivekananda etc., are known for training their sons to greatness. There are several examples of Hindu women who are famous for good administration.

**(9) Status as the queen of the house :--** In the house woman is the queen right from the times of Rigveda. (see vivaha sukta)

**(10 Greatness of Motherhood :--** Motherhood is the supreme

position in a family. Manu Smriti says, 'Mother is greater than father 1000 times' — 'sahasram to pitrim mata'. For little Krishna most passionate thing was `matru hastena bhojanam'. For the west, their country is their father land, but for us Bharat is our mother land. Brahmanda purana says that Parvati taught Subrahmanya "matruvat paradareshu" (see your mother in other's wives.)

**(11) Freedom :--** There were many liberated women in India. There are references to such women in Rigveda, Eg.urvasi, Yami, Romasa, Lopamudra, Apala etc.,

**(12) Equal Opportunity :--** Women who wanted to excel men in various fields had always opportunities. There are many examples such as :

**Matriarchal Culture of Hindus**

Indian way of overcoming the gender feeling is worth mentioning, which is an issue that still remain unsolved in the feminist west. Stree purusha bheda is for ajnanis. Lives of Mirabai, Suka Maharshi etc. explain this wonderful exposition. Rishi Yajnavalkya says, Atma is common in husband and wife, that is why they should love and sacrifice for each other. Where as in the west only man has soul-women are soulless beings. Even today in the western world woman is known by the address of male. Eg. Maria after marrying Joseph is known by the name Mrs. Joseph. In India, in ancient tradition women do not add her husband's name along with her name. On the contrary, men are known by the address of women. Even male Gods are known by the address of women, Eg. Sitaraman, Radhakrishnan, Umapati, Sripati etc. This is a part of a matriarchal culture inseparable to Hindu culture.

According to Yajnavalkya the relation between husband and wife is spiritual. Pativratya and eka patni vrata are general rules in Indian society, which were laid down by swetaketu of Chandogyopanisad. There are innumerable stories of extraordinary powers of pativratas. This is required forstrong

family life and family ideal for bringing up of children in order to create an ideal society. Hindu families are the strongest in the world, hence the crime rate is also very less in spite of poverty and illiteracy. Where as it is very high in the so called affluent western societies where family is broken. In fact, family should be a model for every institution including ruling the country, Industry, society, nation and the whole world — vasudhaiva kutumbakam — the whole humanity is one large family. Women had high place in ancient India irrespective of caste. Aitara — the mother of Aitareyan, Matsyagandhi — the mother of Vyasa, Sarangi — the wife of Rishi Mandapala, Akshamala — wife of Vasishta, Panchami — wife of Vararuchi, Sabari — the scholar are examples. There were about two hundred poetesses in Sangam period like Avvayar, Elaveyini, Venni kuyathi etc. In spiritual circles there were Janabai — the disciple of Namdev, Soyrabai, Nirmala, Bahinabai, the disciples of Tukaram. Eco feminism identifies that ecological degradation has its impact first on women.

## Conclusion

In spite of such a high tradition it is shameful that women's organizations have imported western feminism and women liberation movements into our country. Due to foreign craze these organizations give propaganda outside India that Indian culture means only anti-social customs like sati. Hence we require an aggressive "Swadesi Mahila Reformist movement that will take up modern women's issues. For that an in-depth study on the subjects related to women are necessary. This is a historic necessity.

❍❍❍

# Winning Cannot be Made a Habit

❑ **T.G.L. Iyer**

Winning is hard work. It is never easy or automatic. Winners make mistakes and pass through failures before they win. Winning is punctuated by struggles. Some wins are huge; some are marginal. Failure is a crossroad and not a cliff. Winners make mistakes but manage not to fall off the edge. How problems are dealth with by the winners shapes and decides, whether it is a temporary setback or total disaster.

Remember that is hard to win always and forever, because rules and regulations are designed to encourage competition. In politics, winning matters most; in sports and athletics wins start from small competitions to climb/higher, in studies it is self-discipline and regularity and in life it is hard work combined with luck.

It is not possible to remain at Mount Everest; you have to climb down to breathe oxygen and for fresh invigoration. Success has problems because people expect you to succeed every time which is not possible practicable. Winner game gets tougher and tougher every time because the winners become the target of every opponent.

Success creates imitation and landing of phony products in the market. While in sports and athletics not only failure is not permitted but higher performance is expected.

An uninterrupted cycle of success is no good; responding to adversity sometimes accelerates success. New threats become less threatening. Leaders become stronger as long as they are on the winner's turf.

When winning is taken for granted, members of the winning team feel unrewarded if they win, and get punished if they lose. Every year, the expectation to win, gets higher and higher. An occasional crises makes winning less boring. A tight game, a difficult challenge, a loss, can add drama and excitement and gives an opportunity for renewal. What helps a team win repeatedly, what helps a company to succeed even in tough times is the capacity to solve problems, 'Put Troubles' in perspective and deal with them. This happens at home, place of work and in human relationship.

Risk is around the corner. Whether it is crossing the road or crossing the green light at a traffic junction or even climbing or getting down the stairs, there is risk involved.

Kanter's law says: "Everything can look like a failure in the middle" Happy endings, victories are accepted; but failures with their explanations are rejected. Remember, that in every walk of life, schedules are upset, teams get tired, projects hit dead ends, people burn out and leave, critics attack and unanticipated obstacles surface.

Sometimes it is not pressure to win, but panic not to lose. People can make the situation better if they keep their heads. They can search for root causes, dig deeply to analyze factors, test hypotheses about what is going wrong and what lies ahead; scrutinize self-behavior and modify it and so on.

Panic is the enemy of good decision- making under pressure. In fact, threat creates a fight-flight response even before rational thoughts could be mobilized.

Brain scientists have found out that the body is ready to lash out or run away, before the mind can figure out what to do.

When the leader panics, it percolates down the line. In police, for example, every situation is new and challenging and unless, there is collective consultations and individual decision by the leader, things flop.

Overcoming obstacles, vaulting over hurdles and recovering from chaos, all require a balanced thinking, a level head and distant foresight. When winners keep their heads under pressure, they are better equipped to recover from fumbling. But, when they become complacent, take winning for granted, begin to believe that they can succeed in interested realms and neglect the foundations supporting them, then winners begin to lose. Also, remember, that winning ends from threats and panic. One should be on the toes and not his feet if he wants to act and win.

❍❍❍

# सदस्यता फार्म

GYAN PRABHA
(Quarterly)
ज्ञान प्रभा
( त्रैमासिक )

**मै ज्ञान प्रभा का ग्राहक बनना चाहता / चाहती हूँ :**

**एक वर्ष** (One Year) रु 200/-

आजीवन सदस्य (Life Member) रु. 2000/-

**स्पष्ट शब्दों में लिखें**

नाम ..........................................................................................................

(Name)

पता.............................................................................................................

(Address)

नगर.............................................पिन कोड ☐☐☐☐☐☐ राज्य......................

(Town) (Pin) (State)

टेलीफोन नं.......................................................मोबाईल...........................................

(Ph. No.) (Mob.)

तिथि...........................................................हस्ताक्षर.............................................

(Date) (Signature)

चैक नं./ ड्राफ्ट/सं......................दिनांक....................रु...................का संलग्न है

(Cheque/D.D.No.) (Date) (Amount) (Enclosed)

(ड्राफ्ट/चैक भारत विकास परिषद् प्रकाशन दिल्ली को देय होगा)

(Payable to Bharat Vikas Parishad Prakashan at Delhi)

(भुगतान के साथ इस कूपन को भी भेजें)

## भारत विकास परिषद् प्रकाशन

भारत विकास भवन, बी डी ब्लॉक डीडीए मार्केट के पीछे, पावर हाउस मार्ग, पीतमपुरा, दिल्ली-110034

**फोन नं.: 011-27313051, 27316049**

Bharat Vikas Bhawan, Behind B D Block DDA Market,
Powerhouse Road, Pitampura, Delhi-110034

**भारत को जानो**

**बाल संस्कार**

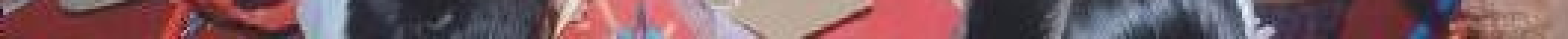

आपात सहायता शिविर

दिव्यांग सहायता

**RNI No. DELBIL/2004/17178**

Published & Printed By : Shri Ajay Dutta, National Secretary General, Bharat Vikas Parishad, Bharat Vikas Bhawan, Plot No. MS 14, AD/BD-Block, (Adjoining BD-87) Behind Power House, Pitampura, Delhi-110034.

Editor : Dr. Champa Srivastava • Printed at : Baba Print Arts, E-318, Sector -5, Bawana Indl. Area, New Delhi